चाँद बोला

(मौलिक क्रान्तिकारी उपन्यास)

रचयिता

श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

संपादक

श्रीकृष्ण दास



मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रकाशक
मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद।

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक :
श्री वीरेन्द्रनाथ घोष
माया प्रेस प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद।

उपन्यास के सम्बन्ध में

श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ एवं लोकप्रिय कथाकार हैं। घरेलू कहानियों की रचना में वह बिल्कुल बेजोड़ हैं। कहानी कहने की कला उनकी निजी विशेषता है। वह कुछ इस प्रकार घटनाओं का ताना-बाना बुनते हैं और उनके पात्रों का कार्य-व्यापार कुछ इस प्रकार होता है कि सर्वत्र सदैव एक सहज स्वाभाविकता का वातावरण बना रहता है। न तो पात्र ही अपरिचित होते हैं, न घटनायें ही अप्रत्याशित होती हैं। शैली की स्वाभाविकता और रचना-कौशल के कारण सब कुछ परिचित, घनिष्ट, स्वानुभूति परक मालूम पड़ता है। भोली-भाली महादेवी, क्रान्तिकारी गिरीश के व्यक्तित्व से अभिभूत होकर मंत्रमुग्ध सी उसके पीछे-पीछे चलने लगती है। गिरीश, जो कि चट्टान की तरह अटल और अडिग है, इस मासूम, बेज़बान लड़की से इतना भर कह पाता है—"महादेवी, जिस राह पर तुम्हें खींच रहा हूँ यह राह बीहड़ ज़रूर है; इस राह में सुख नहीं है, आराम नहीं है, पर यह शुद्ध मानवता का पथ अवश्य है। अपना यह देश, अपने देश की यह पवित्र मिट्टी और ये तुम्हारे चारों ओर सूखे करुण मुख लिये अपलक ताकते खड़े, बेसहारे, ये सब तुम्हारे भाई-बन्धु—इन्हीं के लिए ज़िन्दा रहो महादेवी, कि तुम नरक की ज़िन्दगी पसन्द करोगी? बल न हो, कुछ त्याग न कर सको तो मत आओ मेरे साथ, लेकिन अच्छी तरह समझ लो कि तुम अमीरों का यह ऐश ग़रीबों की नंगी—लाश पर होता है, उनकी छातियों का रक्त निचोड़ कर पलता है। तो तुम यही पसन्द करोगी? पर मैंने तो तुम्हें उसी दिन पहिचान लिया था और मैं अच्छी तरह जानता था कि तुम आज ज़रूर आओगी। तुम ही तो इस मातृ-भूमि की लाज हो, तुम ही इस महान् भारत देश की बेटी हो, माँ हो इस

विशाल देश की। तुम्हीं साथ न दोगी तो हम सब कैसे आगे बढ़ने पायेंगे, कैसे हमारा लक्ष्य पूरा होगा, साथ दोगी न महादेवी ?"

और, महादेवी ने चुपके से कह दिया था—"दूँगी।"

महादेवी ने साथ दिया और इन दोनों के जीवन में वे सारी घटनायें घटीं जो कि गुलाम देश के उन बेटे-बेटियों के जीवन में घट सकती थीं जिन्होंने बलिदान का अग्निपथ अपने लिए चुन लिया था।

और अन्त में, कहानी के बिल्कुल अन्त में, जब नये, स्नेहिल वातावरण में दोनों मिले तो चाँदनी के आवरण से झाँककर चाँद ने सत्य और शिव के इस सुन्दर जोड़े को देख लिया और बोल उठा—"महादेवी, तेरी कहानी मेरे लिए नयी नहीं है। तेरी ही तरह तेरी कितनी ही बहिनें वही कर चुकी हैं, जो कुछ तूने किया है। तेरी उन बहिनों ने भी अपना दुख कलेजे में दाब लेकर, माँ होकर, हजार-हजार सन्तानों की रक्षा की है। और, बदले में कुछ नहीं माँगा है, तेरी तरह! बस, काल की इतिहास-भूमि पर लिखी उन कहानियों में एक कहानी और जुड़ रही है—एक नया पृष्ठ।"

और अश्रु-स्वेद-रक्त से सनी दो क्रान्तिकारी एवं प्रेमविह्वल हृदयों की यह कहानी स्नेहिल पाठकों को इस आशा एवं विश्वास से अर्पित की जा रही है कि इसमें वे स्वयं अपने हृदय की धड़कन और प्राणों का स्पन्दन पायेंगे।

—श्रीकृष्ण दास

चाँद बोला

चाँद बोला

दिन डूब रहा था और दोनों सखियाँ हवेली की अटारी पर खड़ी थीं, खुश-खुश। हौले-हौले हवा बह रही थी और दोनों सखियाँ हल्का-हल्का मन लिये नदी की ओर देख रही थीं। घाट पर एक नाव आकर रुकी थी और तीन-चार छोटे बच्चे किनारे पर शोर मचाकर नहा रहे थे। महादेवी को बहुत अच्छा लग रहा था कि दुलारी ने जैसे याद करके पूछा—"हाँ जी, वह डाके का क़िसा तो सुनाओ! कैसे, क्या हुआ? इतना सब चला गया, तुम्हें नहीं पकड़ ले गये डाकू? तुम्हें नहीं लूटा किसी ने?"

"लूट तो लिया!"—जैसे अनजाने ही महादेवी के मुँह से निकल गया।

"क्या कह रही हो, जी, इधर तो मुँह करो।" दोनों बाहें पकड़ कर अचरज से दुलारी बोली—"तुम्हें लूट ले गया? कौन?"

"डाकू!"—धीरे से कहा—"और कौन!"

दुलारी ने भारी उत्कंठा से मचलकर कहा—"तुम्हें मेरी क़सम, सब साफ़ साफ़ कहो, क्या कुछ गड़बड़ कर बैठी हो?"

महादेवी की आँखों मे जैसे चमक आ गई। निर्भय प्रसन्नता से बोली—"सुन तुझे यह सब सुनाने के लिए ही घर से भाग कर आई हूँ

पन्द्रह मील धूप में सफ़र करके । उस दिन–डाके के दिन, चाचा की लड़की का अन्न-प्राशन था । सब कोई वहीं चले गये थे । नौकरानी थी सो वह दहलीज़ में सो गई थी । मैं आलमारी खोले खड़ी अपनी किताबें लौट-पौट कर रही थी कि आहट पाकर पीछे सिर घुमाकर देखा । मैंने तो भौंचक रही । यों खड़ा था, कैसे तुझे बतलाऊँ, भगतसिंह का वह फ़ोटो देखा है तू ने ? वह जो जेल में खड़ा सीना ताने–मौत को चुनौती देता ! आँखों में आँखें डाल दीं । मेरी देही थर-थर होने लगी । कौन है यह ? क्यों आया है ? घबराकर भीतर को भागी तो डाँट कर बोला–'कहाँ जाती हो ? खड़ी रहो वहीं !' जैसे जादू कर दिया हो उसने । मेरे पैर जम गये तो धीरे-धीरे बिलकुल सामने-बिल्कुल पास आ खड़ा हुआ और दृढ़ता से बोला–'चाबियाँ कहाँ है तिजोरी की ? मुझे रूपया चाहिए । तुमने अगर शोर मचाया तो जान से हाथ धोओगी । मेरे साथी बाहर इन्तजार कर रहे हैं । जल्दी चाबियाँ दो ।' हाय मैया, डाकू है क्या ? मुझे कुछ सूझा ही नहीं । जल्दी से चाबियाँ फेंक दीं तो अफ़सर की तरह बोला–'खुद तिजोरी खोलो ।' तो तिजोरी खोल दी मैंने । बस, पलक मारते उसने उठा ली नोटों की गड्डी और जेबों में नोटों को ठूँसता कहने लगा–'तुम्हारे बाप ने ग़रीबों का खून चूसकर यह दौलत इकट्ठी की है । उनके पाप का बोझ हल्का किये जा रहा हूँ । महमूदपुर के सात-आठ सौ मुसलमान तुम्हारे बाप के नाम को रो रहे हैं । सारा अनाज लगान में वसूल लिया तुम्हारे बाप ने और वे अभागे दाने-दाने को मोहताज हो गये । उनके शायद हृदय ही नहीं है, आत्मा भी नहीं है और, शायद तुम्हारे लिये ही इतना ज़ोर-जुल्म किया जा है ग़रीब किसानों पर–तुम्हारी शादी के लिए । सौ बार धिक्कार है, तुम्हारे

बाप को, और तुम्हें भी। ग़रीबों की नंगी लाश पर तुम्हारी फूल-शैया सजेगी!' दुलारी! मुझे मानो किसी ने गरम सलाख़ से छाती के बीचों बीच छू दिया हो। अनजाने ही मेरे मुँह से निकल गया, अपराधिनी की तरह मैंने कहा—'मुझे तो यह सब कुछ भी मालूम न था।' फिर आँखों में आँखें आ गिरीं। कैसी नजर थी वह, तुझे कैसे बतलाऊँ, जैसे भगवान कृष्ण देखते रहते हैं न मन्दिर में, उसी तरह मेरी ओर अपलक निहारता बोला—'आज सब कुछ जान लिया मुझसे। देखूंगा, कितना बड़ा दिल है तुम्हारा, कितनी उदारता है और दया-ममता है और कितना क्षत्राणी का तेज है। जा रहा हूँ। फिर मिलूंगा तुमसे किसी दिन।' मुड़ा कहकर, फिर पीछे लौटा और माथे पर दोनों हाथ जोड़े और आँख के तारे रोक कर धीरे से कहा—'नमस्ते!' और ओझल हो गया पल भर में।

"चला गया तो ऐसा लगा कि सपना देख रही थी। यक़ीन ही नहीं होता था कि अभी वह आया था, यहीं खड़ा था। फिर बाहर शोर-गुल मचा। बाबूजी भागे आये। मुंह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मुझे यों दीवार से सटी खड़ी देखा जीती-जागती तो छाती से लगाकर रोने लगे। फिर और लोग दौड़े आये। सारा घर आदमियों से भर गया। लठैतों ने पसीना पोंछते जाने क्या कहा, बाबू जी ने जाने क्या कहा। मुझे तो मानो होश ही न था। पागल-सी हो गई थी मैं तो। बार-बार उसकी याद आती थी। बाद में सोते-जागते हर वक्त उसी के ख़्याल मे डूबी रहती।"

दुलारी ने उत्सुकता से फ़ौरन प्रश्न किया—"फिर? फिर आया वह?"

महादेवी ने साँस खींच कर कहा—"आया। मंगल के दिन उसी वक्त। महावीर जी का शृंगार देखने गई थी मन्दिर में। चरणामृत लेने लगी तो

अपने बिलकुल पास एक और हथेली आगे फैली थी। चौंक कर देखा तो मेरे सनाका हो गया, कलेजा धक्-धक् करने लगा। शोर-गुल में फुस-फुसा कर कान के पास बोला—'पाँच सौ रुपये लेकर घर के पिछवाड़े मिलना खंडहर के पास। दस बजे तक प्रतीक्षा करूँगा।' और ग़ायब हो गया भीड़ में। चिन्ता और घबराहट में डूबी घर लौटी तो बाबू जी कपड़े उतार कर खाने बैठे थे और अम्माँ परोस रही थी। जाने कहाँ से इत्ता साहस आ गया! मैंने धड़कते कलेजे से चाबियाँ निकाल ली बाबूजी की जेब से और भीतर जाकर तिजोरी खोल ली। काँपती गई और नोट गिनती गई। किसी ने भी न जाना कि मैं चोरी कर रही हूँ। वह गोमती बुढ़िया देखी है न तूने? उसे मैंने राज़ी कर लिया एक रुपया देकर। बुढिया वहीं खड़ी रही पिछवाड़े का दरवाज़ा खोले और मैं थर-थर काँपती खंडहर तक आई। बैठा था सिर झुकाये कि जाने उनींदा हो गया था। मैंने काँप कर कहा हौले से—'रुपये ले आई हूँ।' तो चौंक कर खड़ा हो गया फ़ौरन, जैसे शेर खड़ा होता है न! बहुत-बहुत खुश दीखा और खुश-खुश बोला—'शाबाश! असली क्षत्रिय-रक्त है तुम्हारा। नाम क्या है, बतलाओ तो!' 'महादेवी'—मैंने हौले से कहा, तो फ़ौरन नाम लेकर बोला—'महादेवी, जिस राह पर तुम्हें खींच रहा हूँ वह राह बीहड़ जरूर है; इस राह में सुख नहीं है, आराम नहीं है, पर यह शुद्ध मानवता का पथ है। अपना यह देश, अपने देश की यह पवित्र मिट्टी और ये तुम्हारे चारों ओर सूखे करुण मुख लिये अपलक ताकते खड़े, बे-सहारे ये सब तुम्हारे भाई-बन्धु इन्हीं के लिए ज़िन्दा रहो—कि महादेवी, तुम नरक की ज़िन्दगी पसन्द करोगी? बल न हो, कुछ त्याग न कर सको तो मत आओ मेरे साथ, लेकिन अच्छी तरह समझ लो कि तुम

अमीरों का यह ऐश ग़रीबों की नंगी लाश पर होता है, उनकी छातियों का रक्त निचोड़ कर पलता है। तो तुम यही पसन्द करोगी ? पर मैंने तो तुम्हें उसी दिन पहिचान लिया था और मैं अच्छी तरह जानता था कि आज तुम ज़रूर आओगी। तुम्हीं तो इस मातृभूमि की लाज हो, तुम इस महान् भारत देश की बेटी हो, माँ हो इस विशाल देश की। तुम्ही साथ न दोगी तो हम सब कैसे आगे बढ़ पायेंगे, कैसे हमारा लक्ष्य पूरा होगा ? साथ दोगी न महादेवी ?' 'दूँगी'—मैने जैसे नशे में कहा, तो बोला—'लो, यह दीक्षा-चिन्ह धारण करो, अपनी भुजा का रक्त दो और प्रतिज्ञा करो—'

दुलारी ने भय-मिश्रित स्वर में प्रश्न किया—"क्या चिह्न दिया ? क्या प्रतिज्ञा करवाई तुम से ?"

"वह मैं तुझे नहीं बतला सकूँगी दुलारी, मैंने उनके सिर की शपथ खाई है।"

"फिर ?"

"फिर वह चले गये उसी दम, मिलने का वायदा करके और मैं घर लौट आई छाती पर पचास मन का बोझ लिये और भरा-भरा दिल लिये। रात भर नींद न आई मुझे। एक-एक बात याद आती और अकारण ही आँखों में पानी भर आता। ऐसा लगता कि मानों किसी अथाह सागर में गिर गई हूं और वह मेरी बाँह पकड़े तैरते चले जा रहे हैं ओठों से मुसकराते और मुझे अपलक निहारते। विभोर हो गई दुलारी, कि कहाँ से, किस स्वर्ग-लोक से कौन-से देवता गिरीश का रूप धारण करके मुझे छलने आये हैं, मेरा जीवन सार्थक करने !"

"गिरीश नाम है ?"

"हाँ दुलारी, यह हिमालय है न, इतना ऊँचा, इतना शुभ्र, इतना विशाल—ऐसे ही तो वह है कि हिमालय के मस्तक पर कौन चढ सकेगा ? सब उसके चरणों तले ही तो खड़े रहते है। सो मैं भी उनके चरणों मे जा खड़ी हुई हूँ सखी, और सब चढा दिया मैने पूजा मे और भिखारिन हो गई।"

दुलारी क्षण भर अवाक् होकर, सखी का मुख देखती रही फिर जैसे अनायास ही उसके ओठों से निकल गया—"अब क्या होगा ? क्या करोगी अब ?"

"क्या करूँगी ?"—महादेवी ने फीकी हंसी हँसकर कहा·-"जो कुछ वह कहेगे वही करूँगी दुलारी, देश-जन्मभूमि, दुखियों की सेवा ! यह सब कितना सुन्दर है ! मैं इसके लिए स्वर्ग का राज भी तज दूँ—ऐसा लगता है। चलती बेला एक किताब दे गये हैं । जोन आफ़ आर्क, तूने नाम सुना है उसका ? देश सेविका थी वह, उसे राक्षसों ने ज़िन्दा जला दिया था—इन्हीं पैसे वालों ने। मैं उस किताब को रोज़ पढ़ लेती हूँ एक बार और मैंने उसे अपनी रामायण के साथ रख लिया है—'गीता' है वह मेरी। रोज़ सोचती रहती हूँ। 'जोन आफ आर्क' कभी हो सकूँगी—शायद कभी न हो सकूं । वह मन्दिर के कलश जैसी थी—मैं मन्दिर की सीढियों तक पहुँच पाऊँ तो धन्य समझूंगी अपने को। मैं जैसे धूल हूँ राह की —"

सहसा किसी ने पीछे से महादेवी के कन्धे पर हाँथ रखकर उसे चौंका दिया। घबराकर पीछे देखा तो चाची खडी थीं—दुलारी की माँ।

प्यार से बोलीं—"चल नीचे चल। मैंने तेरे लिए दही-बड़े बनवाये हैं। दही-बड़े तुझे बहुत भाते हैं न !"

पखवारा बीता और ठाकुर साहब की हवेली से ज़ेवरों की पूरी पेटी गायब हो गई तो तहलका मच गया सारे क़स्बे में। पुलिस के साफ़े दीखे, नौकर-चाकरों की धर-पकड़ शुरू हुई। पर कोई सुराग़ न मिलता था

रात के करुण सन्नाटे में, उसी खँड़हर के बीच महादेवी ने काँपती ज़ुबान से कहा—"कल रामदीन नौकर को पुलिस पकड़ ले गई। उसे हंटरों से पीटा गया है। अपराध मैंने किया है, सजा उसे मिल रही है ! क्या करूँ ?" और इतना कह कर रोने लगी तो गिरीश ने हँस कर कहा—"बस, इतनी ही दृढ़ता है ? निकल आये आँसू !"

महादेवी ने अंचल से आँखे पोंछकर कहा—"उसके दो मासूम बच्चे हैं, औरत है—"

"उनका प्रबन्ध हो जायेगा। ज़ेवर तुम्हारी माँ के थे न ? तुम्हारे लिए रक्खे थे शायद, सो दे दिये तुमने डाकुओं को। अब क्या पहनोगी अपनी शादी में ?"

"शादी नहीं होगी।"

"क्यों, शादी क्यों न करोगी ?"

महादेवी ने उत्तर न दिया। सिर नत किये रही तो गिरीश ने जैसे याद करके कहा—"वे सब तुम्हें देखना चाहते हैं—अपनी लजीली और साहसी बहिन को। किसी दिन चलोगी मेरे साथ, डाकुओं के गिरोह में ?"

"चलूँगी।"

दुलारी से मिलने का बहाना करके, जिस बेला वह इस अज्ञात, रहस्य-मय लोक में आई तो भोजन की तैयारी हो रही थी। जो व्यक्ति परोसने खड़ा था, उसे रोक कर गिरीश ने महादेवी से कहा—"तुम परोसो !"

लाल चेहरा लिये महादेवी ने पूरी पंक्ति को भोजन परोसा। उधर कोने में थोड़ा अँधेरा पड़ता था। एक कम उम्र का बंगाली नवयुवक वहाँ बैठा था। महादेवी रुक कर गिरीश के पास खड़ी थी और सब लोग हंसते-बोलते खा रहे थे कि उसी कोने से आवाज़ आई—"मुझे अभी कुछ नहीं मिला है माँ!"

महादेवी लजाकर उसे खाना देने लगी तो चारों ओर से पुकारें आईं—"दीदी, यह पूरा 'पेटू' है! अरे, इतनी देर में सब चट कर गया! बहिन, प्यार मत दिखलाना। वह सब खा जायेगा दीदी। हम लोग भूखे रह जायेंगे।"

और तब उस बंगाली ने महादेवी का अंचल पकड़ कर कहा—"माँ, ये सब भूठे है। मेरी पत्तल देखलो, तुमने मुझे परोसा ही कब था।"

महादेवी ने संकुचित होकर कहा—"मुझसे भूल हो गई।"

बंगाली बहुत धीरे से बोला—"थोड़ा शाक और दे दो माँ, चपके से।"
"दीदी, रोटी। दीदी, दाल। चटनी देना बहिन।"...

महादेवी जैसे स्वप्नलोक में विचर रही हो। कितना आनन्द, कितना सुख पाया आज उसने। ये उसके स्नेही भाई, ये माँ-दीदी की पुकारें। उसका प्यारा देश, उसकी मातृभूमि, उसकी दुखी-दरिद्र सन्तान। वह माँ है न सब की! माँ!

गिरीश ने आकर पुकारा—"लाओ, मुझे खाना दो और अपने लिये भी परोस लो।" कुल चार रोटियाँ बची थीं, सो उसने गिरीश की पत्तल पर

रख दीं। देखकर खूब हंसा वह और हँसता-हँसता बोला—"अच्छा प्यार दिखलाया भाइयों पर। अब रहो भूखी।"

भूखी! इतनी तृप्ति तो जीवन में पहली बार उसे मिली है। यह आश्रम, ये तपस्वी भाई, यह रूखा-सूखा भोजन — यही तो जीवन है!

सहसा एक साथी ने पीछे से पुकारा—"दादा!"

"क्या है?" उसने कुछ संकेत किया और गिरीश उठ गया खाना छोड़ कर। और घड़ी पीछे लौट आकर महादेवी से कहा चिन्तित स्वर में—"चलो जल्दी, पुलिस आ रही है!"

"जल्दी करो, जल्दी, पुलिस, ज़ल्दी भाइयो!"...

...तीसरे दिन गिरीश की महादेवी से भेंट हुई उसी खंड़हर में तो साँस खींचकर बोला —"सब साथी पकड़ लिये गये और उनके सारे श्रम पर पानी फिर गया। जेल तक जो सुरंग बनाई जा रही थी, अपने महान् क्रान्तिकारियों को बचाने के लिए, उसका सुराग लग गया सरकारी कुत्तों को। क्रान्तिकारी नेताओं को फाँसी से बचाने की सारी कोशिशें बेकार हो गई। संचालकों में अकेला मैं हतबुद्धि होकर भटक रहा हूं और पुलिस मेरे पीछे पड़ी है। सोचता हूं, हिन्दुस्तान से बाहर चला जाऊँ कहीं—"

महादेवी ने काँप कर कहा—"देश छोड़कर मत जाना! तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध है; तुम चले गये तो मैं घुट-घुट कर मर जाऊँगी!"

गिरीश ने शान्त स्वर में कहा—"तुमने बहुत सहायता की है। तुम्हारा ऋण मुझे हमेशा याद रहेगा। पर मुझे मोह से मत बाँधो महादेवी, अब हमारे मार्ग भिन्न हो जायेंगे शायद। मैं अपने जीवन का, अपने शरीर का मालिक नहीं हूँ। जिसके लिये जिन्दा हूँ, मुझे उसी के निर्देश पर

चलना होगा। देश में मेरी ज़रूरत रही तो देश में, नहीं तो विदेश में। दल का समझो विलयन ही हो गया। दो-एक को छोड़कर हमारा एक भी आदमी जेल के बाहर न बचा और उन सब को अब लम्बी-लम्बी सज़ायें होंगी–कालापानी होगा–फाँसी होगी। मेरी ओर से तुम अब अपने को स्वतन्त्र समझो। तुम्हे खुशी-खुशी अनुमति दे रहा हूं, शादी कर लेना और घर-गिरस्ती बसाना, जो नारी का शाश्वत धर्म है। और अब शायद यही अन्तिम मिलन हो हमारा।"

पलक मारते महादेवी ने गिरीश की बाँह पकड़ ली कसकर और रो कर बोली–"तुम ऐसा नहीं कर सकोगे। मुझ अकेला करके क्यों छोड़ देना चाहते हो? मैं शादी नहीं करूँगी। तुम्हारे चरणों की शपथ खाकर कहती हूँ, नहीं करूँगी शादी। मुझे घर-गिरस्ती से घृणा लगती है। तुम्हारे पैरों पड़ूँ, मुझे भी अपने साथ लिये चलो। मैं तुम्हारी राह मे विघ्न नहीं बनूँगी। अपना वचन निभाओ, साथ मत छोड़ो देवता!"

गिरीश पल भर चुप रहा, फिर उसने स्थिर स्वर में कहा–"महादेवी, तुम मोह में डूब कर कातर हो रही हो। मेरे साथ दर-दर, राह-राह और जंगल-जंगल भटकने में तुम्हारा क्या लाभ होगा! तुम नारी हो, यह बात मैं भुला भी दूँ तो भी–"

"कहो आगे, रुक क्यों गये?"

'अच्छा, मुझे ज़रा सोचने का समय दो। अभी तो मेरा दिमाग़ बिल-कुल बेक़ाबू हो रहा है। हो सका तो मैं आज से चौथे दिन यहीं, इसी समय मिलूंगा। प्रतीक्षा करना। रोओ मत महादेवी!"

गिरीश चौथे दिन नहीं आ सका। आया पूरा एक मास बिताकर और इस बार जब उस खँड़हर में महादेवी उसके सामने आकर खड़ी हुई तो काँप रही थी थर-थर। शरीर नहीं, उसका दिल भी काँप रहा था और आत्मा भी काँप रही थी और काँपती वाणी में ही बोली वह, छलछलाये नयनों से गिरीश को अपलक निहारती —"कहाँ चले गये थे तुम मुझे क़साइयों के बीच छोड़कर ? पहाड़ जैसे ये दिन मैंने कैसे काटे है, तुम नही जान पाओगे। कैसी विथा मैंने सही है, तुम कल्पना नहीं कर सकोगे। मुझसे प्रतीक्षा करने को कह गये थे—रोज़ प्रतीक्षा करती रही, तुम्हारी राह निहारती रही रोज़, कलेजे मे दुख-दर्द छिपाये, पर तुम न आये! कहो तो, इतनी पीड़ा मुझे क्यों दी तुमने ? कौन अपराध हो गया मुझसे, जिसकी यह सज़ा मुझे दी है ? तुम्हारे सिवाय अब इस दुनिया में मेरा और कोई नहीं है – यह जानते हो, तो भी मुझे इतने दिनों बिसारे रहे, यह तुमने क्या किया ? इतने बेदर्द क्यों हो गये मेरे ऊपर ?"

गिरीश एक शब्द न बोला। अचल हो कर खड़ा रहा और अपलक ताकता रहा महादेवी के काँपते ओठों को और जल बरसाती आँखों को और मुंह से एक शब्द न बोला। वह तो महादेवी ने उसकी बाँह पकड़ कर आँसू बहाते कहा—"बैठ जाओ। जाने कितनी दूर से पैदल चल कर आये हो, बहुत थक गये होगे, बैठ जाओ दया करके।"

तो गिरीश बैठ गया टूटी ईंटों के चबूतरे पर। महादेवी आज उसके पास न बैठी। आज वह नीचे ज़मीन पर बैठी, गिरीश के चरणो के पास।

घड़ी भर दोनों चुप रहे। फिर महादेवी ने सिर डाले कहा—"इस एक महीने में यहाँ जाने क्या-क्या हो गया।"

"क्या हो गया ?"—गिरीश ने अप्रात्याशित रूप से चौक कर पूछा तो महादेवी ने एक बार नज़र ऊपर की, एक बार उसका चेहरा देखा, फिर नयन नत कर लिये और हौले से कहा—"शादी तय हो गई।"

"शादी तय हो गई ? तुम्हारी ?"—गिरीश आश्चर्य से कह उठा।

महादेवी ने क्षण भर रुक कर आगे कहा —"मै सब प्रयत्न करके हार गई। माँ-बाप नही माने। वे मेरी बलि देने को उतारू है। मैं उन्हें नही समझा सकी—और किसी को भी नहीं समझा सकूंगी कि मैं किसी के हाथों बिक चुकी हूँ। मेरे तन-मन का स्वामी है कोई। मेरे प्राण—मेरी आत्मा—सब कुछ किसी ने अपने अधीन कर लिये है।

क्षण भर रुक कर महादेवी ने फिर कहा—"अब तुम आ गये हो। अब बोलो मेरे लिये क्या आज्ञा देते हो ? तुम अपने साथ तो मुझे ले नही जा सकोगे, इस योग्य ही मैं नहीं हूँ। तव फिर कौन उपाय करूँ अब इस विपदा से बचने का ? मेरे लिए तो अब और कोई राह ही नहीं है। शादी नहीं कर सकूँगी—तुम्हारे चरणों की शपथ खा चुकी हूँ। यह इतना भारी पाप मुझसे मत करवाना। और अब शायद तुम से कभी भेंट भी न होगी मेरी। अब आज अन्तिम बार मेरे ऊपर इतनी करुणा किये जाओ—आत्म-हत्या के लिये 'हाँ' कर दो ! नदी में बहुत जल है और जहर भी रख लिया है सम्हाल कर। केवल तुम्हारी आज्ञा भर लेनी है, इसी से रुकी रही—इसी से सारे ज़ोर-जुल्म सहती रही। यह देखो, मेरे हाथ में व्याह का कंकण बाँध दिया है हत्यारों ने। यह देखो, मेरी सफेद धोती पर हल्दी की छापें लगादी हैं ज़ालिमों ने। ढोलक बज रही है, मंगल-गीत हो रहे सुन रहेहो न ? अब और कितने अत्याचार करवाओगे मेरे ऊपर ? तुम्हे दर्द

नहीं लगता देवता ? तुम्हें मेरे ऊपर दया नहीं आती देवता ?—तुम्हारी वस्तु तुम्हारी आँखों के सामने किसी दूसरे को सौंप दी जाय, इसे सह सकोगे ? बोलते क्यों नही ? बोलो तो ! मेरी बात का जवाब तो दो ! बोलो देवता ! बोलो ! अब मै तुम्हे मौन नही रहने दूँगी !"—महादेवी ने आँसू बहाती आँखों के तारे गिरीश के मुखपर स्थिर कर के कहा, उसके घुटनों को हाथों से झकझोर कर—"बोलो, मैं क्या करूं ? क्या करूं अब ? बोलो, आज्ञा दो—आत्म हत्या के लिये आज्ञा दो। आज्ञा दो !"

गिरीश पत्थर की मूर्त्ति बना बैठा रहा और उसने फिर भी मुख न खोला तो पल भर महादेवी मूक हो गई। फिर सहसा नीचे को झुक कर गिरीश के चरणों पर उसने अपना सिर पटक दिया और फिर बार-बार उन चरणों पर सिर-पटकने लगी तो गिरीश ने पागलों की तरह चिल्ला-कर पुकार—"महादेवी !" और उसका सिर अपने हाथों पर रोक लिया और जिन्दगी में शायद पहली बार वह कातर हुआ। कातर कंठ से उसने पुकारा—"मेरी बात तो सुनो महादेवी !"

उसने बलपूर्वक महादेवी को अपने पास बैठा लिया। फिर एक बार नज़र भरकर महादेवी के आँसुओं से भीगे और धूल से सने चन्द्रानन को निहारा और फिर पागलों की तरह पुकार उठा—"नहीं ! मैं तुम्हें मरने नहीं दूंगा !"

तब महादेवी ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर करुण-दीन वाणी में कहा—"इतना ज़ुल्म मत ढाओ तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, इतने निष्ठुर मत होओ मुझे भट्टी में मत झोको, मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँ—" और फिर झुक कर पैरों पर गिरने लगी तो गिरीश उसे रोक कर काँपते कंठ से

बोला—"मैं अपने साथ ले चलूँगा। मैं तुम्हें—" और आगे वह कह न सका और उसका गला भर आया और शायद ज़िन्दगी में पहली बार उसकी आँखें सजल हो उठीं।

पत्थर का देवता जैसे हिल गया एकबारगी।

... ...

निश्चय किया था कि ठीक शादी की रात को दस बजे गिरीश इसी इसी खँड़हर में आयेगा और तुरन्त महादेवी को अपने साथ ले जायेगा। बारात तीन दिन बाद आने को थी और अर्धरात्रि के बाद व्याह की लग्न थी। महादेवी को लेकर वह कहाँ जायेगा? गिरीश ने बतलाया था कि पहले वे अपने एक मुसलमान मित्र के यहाँ पहुँचेंगे, वे लोग फिर प्रयत्न करके, उसी मित्र की सहायता से, कहीं विदेश भाग जायेंगे। और फिर? फिर क्या करेंगे? क्या लक्ष्य बनायेंगे? देश की आज़ादी का स्वप्न कैसे पूरा होगा? वह स्वयं क्या करेगा? महादेवी क्या करेगी?—गिरीश कुछ नहीं बतला सका। केवल साथ ले जाने का वचन देकर वह रात के अँधेरे में ग़ायब हो गया।...नियत तिथि पर, शाम होते-होते बारात आ गई बैंड बजाती और आतिशबाज़ी छोड़ती और फिर हवेली के विशाल आँगन में मंडप तले पंडित जी ने चौक पूरा और महादेवी को दुलहिन के वेश में सजाया गया और उल्लास भरी प्रतीक्षा की जाने लगी—पवित्र यज्ञ—वेदी के आगे, अग्नि को साक्षी करके किसी अपरचित नवयुवक के हाथों में महादेवी को समर्पित करने के लिये इन्तज़ार किया जाने लगा। कन्या-दान के लिये समुद्यत, दिन भर का उपवास किये माता पिता भावी दामाद के लिए मानों पलकें बिछाये बैठे थे और फिर क्रमशः रात्रि बीतने लगी

—नौ बजा, दस बजा, ग्यारह बजा और फिर बारह भी बज गया। पर गिरीश न आया। हाय, गिरीश न आया!—वह आ नहीं सका, वह अपना वचन निभा नहीं सका, वह महादेवी की रक्षा कर नहीं सका।

क्या हुआ? कुछ नहीं हुआ। बहुत साधारण-सी बात हुई। झम-झम बरसते पानी में, अँधेरी राह में वह सरपट भागता आ रहा था किसी को बचाने के लिए—साथ ले जाने के लिए कि अचानक ही एक मोड़ पर गिरीश को चारो ओर से पुलिस ने घेर लिया। वे उसकी प्रतीक्षा में खड़े थे और वह कुछ प्रतिकार न कर सका; कुछ भी न कर सका और पुलिस की टोली उसी बरसते पानी में बड़ी सावधानी से उसे अपने साथ ले गई।...

महादेवी के माता-पिता ने 'कन्यादान' कर दिया। अर्धरात्रि के बाद ग्रन्थि-बन्धन हो गया। जब यहाँ हवेली के प्रांगण में सप्तपदी की क्रिया पूर्ण की जा रही थी—जब प्रज्जवलित अग्नि की चारो ओर वर-वधू प्रदक्षिण कर रहे थे, गिरीश कोतवाली की एक छोटी-सी कोठरी में बैठा था अँधेरे मे आंखें खोले और कोठरी के दरवाज़े पर सन्तरी खड़ा था बन्दूक़ कन्धे पर रक्खे।...

फिर क्या हुआ? फिर भोर की बेला मे बारात की बिदाई हो गई। नववधू अपने साजन के साथ ससुराल चली गई आँसू बहाती और गिरीश को एक बन्द लारी में सदर पहुँचाया गया, सदर से फिर कमिश्नरी—उसकी भी मानो यहाँ से बिदाई हो गई।

फिर गिरीश पर केस चला, जैसे और सब क्रान्तिकारी भाइयों पर केस

चला था। फिर उसका फैसला हुआ, जैसे और सब भाइयों का हुआ था। फिर उसको दण्ड सुनाया गया, जैसे और सब भाइयों को सुनाया गया था।

फिर उसने जेल की—काल कोठरी की अथकनीय यातनाएँ सहीं, जैसी उसके और सब भाइयों ने सही थीं। फिर उन्हीं नारकीय यातनाओं के बीच, पशु से भी बदतर होकर उसका मानव-जीवन धीरे-धीरे बीतने लगा, जैसे उसके और सब भाइयों का बीत रहा था और जिनमें से कुछ मर कर छुटकारा पा गये थे और कुछ मौत के मुंह में जा गिरे थे। देश, प्यारी मातृभूमि, आजादी और प्राणों से लिपटी महादेवी—सब जैसे भोर का का सपना हो गया।

... ...

फिर क्रमशः साल बीते। फिर वह साल आया, वह मास आया, वह दिन आया कि सदियों की गुलामी के बाद देश हमारा स्वतंत्र हो गया। सम्पूर्ण बलिदान सार्थक हो गये—सब स्वप्न सत्य हो गये। आधी रात को, उस मंगल बेला में, अपनी जेल की कोठरी में बैठा गिरीश और कोई उपाय न पाकर, विह्वल होकर, ज़मीन पर सिर रख कर रोने लगा आनन्दा—तिरेक से।...

देश स्वतंत्र हो गया और धीरे-धीरे सारे राजनैतिक क़ैदी रिहा किये जाने लगे तो सहसा एक दिन गिरीश को भी छुटकारा मिल गया जेल से।

दिन के उज्जवल आलोक में, जेल के विशाल फाटक से बाहर, खुली उसकेसड़क पर गिरीश आ खड़ा हुआ। कोई स्वागत करने न आया, किसीने फूलोंकी मालान पहिनाई, कोई न आया। कहीं से खबर पाकर बहनोईज़रूर आ गये थे और वहीं सड़क पर एक पेड़के नीचे खड़े इन्तज़ार कर रहे थे

और तो दुनिया में अपना कहने को कोई था ही नहीं। बस, अकेली यही बहिन बची थी, जिसकी छोटी-बड़ी सात सन्तानें थी और गिरीश के बहनोई किसी आफ़िस मे साधारण से क्लर्क थे।

बहिन उसे पाकर बहुत रोई और बहुत खुश हुई और बहुत प्यार से उसे अपने पास रक्खा। परन्तु जेल के भयानक कष्ट सहते-सहते गिरीश का शरीर एकदम जर्जर हो गया था और वह पूर्णतया रोगी हो चुका था। शायद 'क्षय' हो गया था। अपनी सरकार ने उसे सेनोटोरियम भेजने की व्यवस्था की और वहाँ फ्री चिकित्सा की सुविधा प्रदान की। और इस प्रकार गिरीश,बहिन के घर की खाट छोड़ कर यहाँ की खाट पर आ लेटा और पहाड़ों के बीच, सुनसान काटेज में, ज़िन्दगी के लम्बे-लम्ब उदास दिन बीतने लगे उसी खाट पर लेटे-लेटे।

... ...

इस सेनीटोरियम में जब वह पहले दिन आया था, उसे रात को नींद न आई थी। छः हज़ार फ़ुट कीं ऊँचाई पर बने उस सरकारी सेनीटोरियम मे सिर्फ़ चालीस 'बेड' थे और केवल विद्यार्थियो और शिक्षको के लिए था यह। उन्ही चालीस नौजवानों के बीच उसे भी एक सिंगल सीट वाला कमरा दे दिया गया। परीक्षण और प्रबन्ध होते-होते दिन किसी तरह बीता, फिर रात पड़ गई। फिर क्रमशः रात के घंटे बीतने लगे तो चारों ओर से खाँसने की और कराहने की आवज़ें आने लगीं और बीच-बीच में कोई पहाड़ी पक्षी अजीब से स्वर में बार-बार बोलने लगा। गिरीश को नींद न आई उस रात, जैसे जेल में नये आये क़ैदी को पहली रात नींद नहीं आती ठीक जेल की तरह ही तो लगता था सब। एक ऊनी कोट

मिला, एक घुटन तक का तंग पाजामा मिला, दो लाल कम्बल मिले। यही ड्रेस पहने सब कोई दीखते थे। खाने का घंटा बजता था, सोने का घंटा बजता था, उठने का घंटा बजता था; और नियत समय पर डाक्टर आता, नियत समय पर दवा दी जाती, टेम्परेचर लिया जाता। सब ओर पहाड़ों से घिरी यह एक अलग-थलग दुनिया थी, जहाँ चारों ओर टी० बी० थी और रोगी एक-दूसरे को 'मिस्टर टी० बी०, कह कर पुकार रहे थे।

धीरे-धीरे तीन-चार नौजवान पुराने रोगी टहलते-टहलते इधर आये, इस नये रोगी को—नये क़ैदी को देखने। नमस्कार हुई और बरामदे में खड़े हो गये सब थमलों का सहारा लेकर और पूछा कि "आप कहाँ से आ रहे हैं ?" और तब एक पुराने रोगी ने सुनाया—"रात एक रोगी चल बसा। अब हम लोग उनतालीस रह गयेहै! "कैसे मरा वह रोगी ?" कहने लगा—"हालत तो उसकी कई दिन से खराब थी। रात दस बजे के क़रीब उसने नौकर को पुकारा, आवाज़ बहुत ही क्षीण हो गई थी। नौकर ने मुंह के पास कान ले जा कर पूछा—'क्या कह रहे है शा' ब ?' मरणासन्न रोगी ने कहा 'देखो, मेरे बाबू जी आयें तो उनसे यह कह देना...।' नौकर सब जानता था कि यह चंद घंटों का या एक रात का मेहमान है। नौकर ने झुक कर पूछा—'आपके बाबू जी से क्या कह दूँ शा' ब ?' पर तब तक रोगी चुप हो गया हमेशा के लिए! भगवान् जाने, क्या कहना चाहता था, क्या अन्तिम सन्देश देना चाहता था वह नौजावान रोगी अपने पिता के लिये! अभी उसकी लाश पड़ी है, अभी घर वालों को तार दिया गया है। अब वह सीट खाली हो जायेगी और उस सीट पर कोई

दूसरा नौजवान रोगी आ लेटेगा और फिर वह भी मौत का इन्तज़ार करेगा।"

गिरीश सब सुनता रहा आँखें खोले। दूसरे लड़के ने वक्ता से कहा —"अब तेरा ही नम्बर है!" वक्ता ने कहा —"तेरा नम्बर भी आने ही वाला है। हम सभी को शायद यही मरना है—इसी सेनीटोरियम में।"

निश्चिन्त होकर मौत की प्रतीक्षा करने वाले ये अभागे नवयुवक प्रायः कमनीय मुखों वाले, सुन्दर—हसीन थे और कोई बी०ए० और कोई एम० ए० का छात्र था। गिरीश के हाथों में डांगे की लिखी 'हिस्ट्री' देख कर उस नौजावान ने पूछा, जिसे साथी मिश्रा-मिश्रा कह रहे थे—"इस किताब को आप पढ़ लें तो बाद को मुझे दे देंगे ? मैं हिस्ट्री से ही एम० ए० कर रहा था। देखूँ, डांगे ने क्या नया लिखा है।"

"जरूर दूँगा आपको" गिरीश ने स्नेह से कहा—"आप कहाँ से आये हैं ?'

"मैं तो बरेली से आया हूँ।"...

...इस मिश्रा से धीरे-धीरे घनिष्टता हो गई गिरीश की, तो एक दिन अवसर पाकर मिश्रा ने अपनी करुण कहानी सुनाई कि वह अपने ग़रीब माँ बाप का इकलौता बेटा है और बड़े कष्टों से उसने शिक्षा पाई—बड़ी मुसीबतों से वह एम० ए० तक पहुँचा और प्रीवियस करके फाइनल मे था और पूर्ण आशा थी कि 'टाप' करेगा और फिर किसी कम्पटीशन मे बैठेगा। आई० ए० एस० पी० सी० एस०, किसी न किसी चुनाव मे जरूर आ जायेगा और माँ-बाप की सारी अभिलाषायें सारी तमन्नायें पूरी करेगा। पर जाने क्या हो गया अचानक कि सब मंसूबे अधूरे रह गये—सारी हसरतें, सारी

तमन्नायें चकनाचूर हो गईं और यहाँ आ गया वह इस सेनीटोरियम में "और एक दुख की बात सुनिये, पिछली साल ही शादी हुई है मेरी !"—रुक गया इतना कहकर और फिर बोला आगे—"उसका क्या होगा अब, यही सोचता रहता हूं दिन-रात। ज़रा-सी उमर है और कुछ नहीं देखा है उसने अभी। बहुत भोली है और बहुत सुकुमार है। क्या करूँ मैं, बतलाइये ! उसके लिए मैं क्या प्रबन्ध करूँ ? मेरा एक फेफड़ा बिलकुल सड़ गया है—उसका आपरेशन होगा। नहीं जानता, आपरेशन के बाद बचूँगा या नहीं। बच भी गया तो किस काम का रहूँगा मैं, एक फेफडे का आदमी—एक चलती-फिरती लाश ही तो होगी ! पत्र आया था उसका। लिखा था—रोज़ मन्दिर जाती हूँ, रोज़ भगवान के चरणों में सिर रखकर तुम्हारे स्वास्थ्य-त्राण की भिक्षा माँगती हूँ।" वह अबोध क्या जाने, भगवान कितना ज़ालिम है, भगवान उसकी प्रार्थना हरगिज़ न सुनता होगा। मैंने उसे लिख दिया है कि अब पढाई फिर से जारी कर दे। इंटर कर चुकी थी। बी० ए० करके फिर एल० टी० कर लेगी तो रोटी का ठिकाना हो जायेगा। मैंने ठीक किया न ?"

"बहुत ठीक किया" गिरीश ने कहा और पूछा–"है कहाँ वह ? मायके में ?" इतने में नर्स ने दौड़ते हुए आकर कहा मिश्रा से—"साहब अपने 'बेड' पर जाइये। बड़े डाक्टर राउंड पर आ रहे हैं !"

गिरीश के सिंगल सीटेड कमरे के दायीं ओर लड़कियों के काटेज थे पाँच-छ. लड़कियाँ थीं वहाँ और इनके ठीक सामने लड़के थे। रात को जाने कौन रसिक लड़का गा उठा–"घर हमने लिया है तेरे घर के सामने, बिस्तर बिछा दिया है तेरे दर के सामने !" मौत के साये में

खड़े आदमी का यह नटखटपन देखकर गिरीश को हँसी आ गई कि मनुष्य कितना विवश है—कितना निर्बल है !

उन लड़कियों में से एक की खिड़की गिरीश की खिड़की के ठीक आमने-सामने थी। सुबह को अनायास ही गिरीश की नजर उधर चली गई तो देखता ही रह गया। इतना लावण्य, इतनी रूपश्री ! गुलाब की कली थी जैसे वह लड़की। खिड़की के पास ही खिड़की के पास ही बैठी और टगर-टगर आकाश को देख रही थी। आँखों मे भी एक नील आकाश था जैसे, अनन्त और सुनसान गहराइयों से भरा। देखकर दया लगी।

दोपहर को गिरीश को नींद आ गई। सोकर उठा तो वही लड़की फिर दिखी। कमरे से बाहर नाली के किनारे बैठी खाँस रही थी और खाँसी के हर ठुमके के साथ मुँह से लाल-लाल खून निकल पड़ता था। ओह ! यह कैसा दारुण दृश्य है। गिरीश ने उधर से आँखें फेर लीं।

फिर नर्स आई भागी-भागी, छोटा डाक्टर आया, इंजेक्शन लगा। और उस समय गिरीश सुन पाया, डाक्टर सान्त्वना दे रहा था—"रोओ मत शीला, तुम्हारे बाबू जी को बुला रहे है। घबराओ मत बेटी, तुम अच्छी हो जाओगी। बाबू जी को बुला दें न ?"

पता नहीं, शीला ने क्या कहा हिचकियों के बीच !...

शाम को मिश्रा फिर आ खड़ा हुआ और उसने बतलाया कि कल उसका आपरेशन होगा, देखिसे, क्या परिणाम हो। कहने लगा—"डांगे की की किताब आधी ही पढ़ पाया हूँ, अच्छा लिखा है। बच गया अगर तो किताब पूरी कर लूँगा। चला गया अगर तो आप नर्स से कहकर अपनी कताब मंगवा लीजियेगा। सामने ही आलमारी पर रक्खी है।"

गिरीश ने आश्वासन के स्वर में कहा——"यों निराश नहीं होते हैं। आपरेशन जरूर सफल होगा। मैं तो इस पड़ोसवाली लड़की की हालत देखकर बहुत चिन्तित हूँ।"

"कौन-सी लड़की ? शीला ? अजी, वह क्या बचेगी, अब उसका भी चलाचली की वेला है। आप जानते है, इसका क्या केस है ? सीतापुर के एक वकील की लड़की है यह। इंटर में पढ रही थी कि इसे किसी से प्यार हो गया। प्यार हो जाना तो आप जानते हैं, एक स्वाभाविक सी बात है और कब, किस घड़ी, किससे प्यार हो जाय—कोई ठिकाना है, प्यार तो चाहे जब हो जाता है। अब आप कहें कि साहब, प्यार क्यों हो गया ? तो इसका भला क्या जवाब देगी कोई लड़की ! लेकिन नहीं, प्यार किया तो समझो बहुत ही बुरा काम किया, पाप किया मानो। और ऐसे पापी को कभी क्षमा नहीं दी जाती। दो भाई, कसकर कोई करारा-सा दण्ड ! इस शीला को दण्डयों दिया गयाकि वकील साहब ने शादी करदी इसकी चटपट किसी दूसरे लड़के से। पर शादी कराके भी वकील साहब इसका कलेजा नही निकाल सके। प्यार तो कलेजे में था, शादी हुई जिस्म की। प्यार तो मिटा नहीं, वह जिस्म घुलने लगा। धीरे-धीरे और घुल गया। आखिरकार जिस्म और अब वह चली जायेगी प्यार की बैरिन इस दुनिया से।

"मरती तो वह यों भी पर रनधीर नें उसे समझिये और जल्दी मार डाला ! रनधीर वह है—कल जो खडा था यहाँ, ऊँची-नुकीली नाक वाला। उसके पास ग्रामोफ़ोन है। वह ग्रामोफ़ोन कभी यों ही बजाने लगता है, चाहे रात हो चाहे एक दिन। एक ग्रामोफोन पर एक रेकार्ड चढ़ा तो इस साइड से नर्स भागी-भागी गई कि साहब, इस रेकार्ड को मत बजाओ

सामने वाला पेशेंट परेशान हो रहा है। सामने वाला पेशेंट यही शीला थी। रेकार्ड वह सचमुच खतरनाक है और हममे से अधिकांश उसे सुनना नहीं चाहते। पर रनधीर को कोई नही रोक सकता। शीला इस रेकार्ड को सह नही पाती। जानकर रनधीर ने कहा—"बेवकूफ़! मैं तो उसका इलाज कर रहा हूँ। यह रेकार्ड सुन-सुनकर छुटकारा पा जायगी अभागिन।" और वही रेकार्ड उसने पिछली रात फिर बजाया। सच पूछिये तो मुझ से भी नही सहा जाता वह गीत—

तेरी याद मे राधा मर गई दिल का दरद छिपाय!

पपीहा रे, मेरे पिया से कहियो जाय!...

"कहिये तो कैसे सह पायेगा कोई इन दुखभरी पंक्तियों को! और आज शीला को खून की कै हो रही है। जान पड़ता है, उस गीत को सुनकर सारी रात रोई है बेचारी! भाई जी, आप भी विवाहित हैं न?'

गिरीश ने हँसकर कहा—"नही।"

मिश्रा ने पूछा—"तो क्या आप भी मरीज़े इश्क है?"

गिरीश हँसने लगा तो सुनकर मिश्रा ने कहा—"जैसे बुख़ार बजाये खुद कोई बीमारी नहीं है, बल्कि किसी बीमारी का सूचक है, ठीक वैसे ही यह टी० बी० भी खुद कोई रोग नहीं है। यह तो किसी अन्य रोग का प्रतीक है। मसलन-ग़रीबी का रोग, जैसे कि मैं हूँ। प्रेम का रोग, जैसी कि शीला है। अमीरी का रोग जैसे कि रनधीर है। रनधीर पैसेवाले बाप का बेटा है। सुरा और सुन्दरी का 'ओवर-सेवन' करते-करते यहाँ आया है। तो भाई जी, आप का वह असली मर्ज क्या है, यह जानना चाहता हू।"

मुस्कराकर कहा— "मैं तो भाई, बहुत लम्बी जेल काटकर,
या हूं।"

"ठीक है," मिश्रा ने आश्वस्त होकर कहा—"अत्याचार का रोग है आपको या कहिये देश-भक्ति का। हाँ साहब, यह रोग भी लोगों को अक्सर हो जाता है। बुरी बीमारी है!"

गिरीश हो-हो करके हंस पड़ा तो मिश्रा भी दिल खोलकर हंसा। भोजन की घंटी बज रही थी। मिश्रा ने बरामदे से उठते-उठते कहा—

"अलविदा भाई साहब, पता नहीं अब आपके पास फिर बैठने आऊँ या नहीं। खुदा हाफ़िज!"...

...उस रात को फिर गिरीश को नींद न आई और वह जागता रह गया और रह-रह कर शीला की और मिश्रा की बातें याद आती रहीं और फिर अचानक ही जाने कैसे यह ख़्याल आया कि यहाँ की ज़िन्दगी उस ज़िन्दगी से कितनी मिलती-जुलती है, जो उसने इतनी सालों तक काटी है। जीवन का एक समूचा भाग ही जहाँ बीत गया, वह जगह भी तो ऐसी ही थी। वहाँ भी लोग इसी तरह मौत का इन्तज़ार करते थे और मरते थे। फ़र्क सिर्फ़ इतना ही है कि वहाँ लोग श्रम करते मरते थे और यहाँ आराम करते मरते हैं। वहाँ आराम करने की सख़्त मुमानियत थी और यहाँ काम करने की है। वहाँ भी 'मिश्रा' थे जो अपने प्रियजन को बिलखता छोड़ आये थे और याद आया कि जब-जब उसने किसी शीला की कहानी सुनी थी तो फिर रात होने पर जेल के अंधेरे में एक 'छाया' डोलती नज़र आती थी। कौन थी वह?

और इतने दिनों के बाद आज फिर गिरीश को सेनीटोरियम के अंधेरे में वही 'छाया' डोलती नज़र आई तो उसने धीरे से कहा– "कौन हो तुम? तुम मेरी निबलता हो क्या ? यदि ऐसा ही है तो मुझे क्षमा करो ! मैं कभी निबल नही रहा। मै तो उन सहिष्णु बलशालियों में से हूं, जिन्हें कोई न झुका सका।"

वह 'छाया' लुप्त हो गई कही अंधेरे में और सहसा दृश्य वदल गया और जेल में अपने बन्धुओं पर हुए अमानवीय अत्याचारों की जैसे फिल्म चलने लगी उस अंधेरे में। उन साहस के पुतलों की दृढ़ता आई गिरीश की आँखों के आगे, उन सूरमाओं की एक-एक करके होने वाली शानदार मौतें आईं उसकी आँखों के आगे ! और, मौत से बचे हुओं की भी कितनी लम्बी दास्ताँ है और अब जाने कौन कहाँ है? वे जीवन-साथी अब शायद कभी न मिलें–कभी न मिलें ! मिश्रा कहता था–हम सबको यही मरना है। शायद मुझे भी। और हंसी आगई यह सोचकर कि इतने सालों तक इतनी यातनाएँ सहकर तो न मरा मैं, अब गद्दों पर आराम से लेटा हूं और पुष्टिकारक पदार्थ खा रहा हूं तो मरण आ रहा है पास! मेरा जीवन भी कितना अद्भुत है !

... ...

मिश्रा नही बचा। सुना था कि ऑपरेशन के बीच ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। शीला भी नहीं बची। वह मिश्रा से चार दिन बाद गई। मिश्रा जिस दिन मरा पूरे सेनीटोरियम पर जैसे एक दहशत-सी छा गई थी। शीला मरी तो जैसे करुणा सिसकती रही सारी रात।

और तब गिरीश ने मन ही मन पूछा–"मैं भी नहीं बचूंगा क्या?" पर ऐसा नहीं हुआ। उन चालीस रोगियों में से अनेक स्वस्थ भी हो

गये और स्वस्थ होकर अपने घर लौट गये और उनकी जगह उनकी सीटों पर नये चेहरे आ गये। नये चेहरे आते गये और पुराने चेहरे छिपते गये, पर गिरीश उसी सिंगल-सीटेड कमरे में लेटा रह गया साल भर।

फिर जाड़ा आया, फिर गरमी आयी, फिर बरसात आयी और फिर जाडा आ गया। यह माला दो बार घूम गई और बसन्ती बयार चलने के दिन आ गये तो एक दिन बड़ा डाक्टर आया और गिरीश के पास बैठकर बहुत प्रसन्न होकर बोला– "अब आप पूर्ण स्वस्थ हैं, अब कोई डर नहीं है अब आप जा सकते हैं।"

डाक्टर हाथ मिलाकर चला गया तो गिरीश बड़ी देर तक स्तम्भित होकर बैठा रहा कि—अरे यह क्या हो गया, क्या कह गया यह डाक्टर

उसे यह जैसे याद ही नहीं रहा था कि एक दिन सेनीटोरियम छोड़ देना होगा। यहाँ रहते-रहते इस जीवन का अभ्यस्त होकर जैसे बिलकुल भूल ही गया था कि एक दिन यहाँ से कूच करना है।......

और तब उसे खयाल आया बैठे-बैठे कि अब वह ममतामयी नर्स आकर उसे नहीं जगाया करेगी। "उठो साहब, नाश्ता कर लो। रात ठीक से नींद आयी न ?" कोई नहीं पूछेगा अब।

वह पहाड़ी रसोइया अब कभी उसके आगे आकर न कहेगा—"शा'ब दूध ठडा हो जायेगा। पी लो शाब

और जमादारिन की वह छोटी लड़की अब कभी न आयेगी उसके पास बिस्कुट माँगने और कोमल हँसी हँसने।

ओह!...

···सेनीटोरियम की गाड़ी उसे स्टेशन तक पहुँचा गई। 'वेटिंगरूम' में अपना ज़रा-सा सामान रखकर गिरीश बैठ गया और सोचने लगा — अब ? कहाँ जाऊँ अब ? किस दिशा को ? किस शहर को–किस घर को? किसके पास ? और अब मैं करूंगा क्या ? अब मेरी ज़िन्दगी का लक्ष्य क्या है ? कहाँ है मेरी मंज़िल ?

'स्वतंत्र होकर देश तो आगे बढ़ रहा है, पर नीचे से उसकी जड़ खोखली होती जा रही है। यह क्या हो गया ? सब प्रकार चरित्र-बल खोते, सब प्रकार की नैतिकता से गिरते अपने इस देश को मैं किधर से रोकूँ-किधर से बचाऊं ? कोई ठोस क़दम उठाने वाला चाहिये–वे कर्मठ, सर्वस्व त्यागी मेरे साथी जाने कहाँ हैं और मैं अब 'अशक्त' हो चुका हूँ। पंगु बना मैं इतना बल कहाँ से पाऊँ कि ज्वाला जला सकूँ, अग्नि-कुंड धधका सकू और भस्म कर सकू देश का सारा कालुष्य ? हाय, मैं क्या करूं ?' और तब जाने कैसे गिरीश का मन भटकता-भटकता वहाँ जा पहुँचा जहाँ सालों पहिले, खंडहर में खड़ी, आँसुओं से भीगा मुख लिए, काँपते ओठों से करुण प्रार्थना करती किसी बाला को देखा था। और गिरीश के डूबे-डूबे मन ने पूछा– "उसका क्या हुआ फिर?" और बिना कुछ विचारे जाने किस अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर इस क़स्बे की धूल भरी सड़कों से गुज़रता ठाकुर साहब की हवेली के द्वार पर जा खड़ा हुआ। हवेली बिलकुल सूनी पड़ी थी और फाटक के आगे एक बुड्ढा-सा आदमी बैठा रस्सी बट रहा था।

गिरीश ने संकोच करके कुछ पूछा तो उस बुड्ढे ने कहा—"किस बीते ज़माने की बात पूछ रहे हो बाबू, ठाकुर साहब तो बिटिया का ब्याह

करके उसी दिन काशी वास करने चले गये घरवाली को साथ लेकर और यहाँ के सब बन्धन तोड़ कर।"

"बिटिया कहाँ है ?"

हँसकर बोला, "अपने घर होगी। आप कैसी बातें कर रहे हैं बाबू ! अरे, उसका आदमी तो इत्ता बड़ा अफ़सर है, लखनऊ में कोठी खड़ी है उसकी—शमशेर सिह को सारा लखनऊ शहर जानता है, चाहे जिससे उसका नाम पूछ लो और आप कौन हैं ? कहाँ से आये है ? बिटिया को क्यों पूछ रहे हैं ? क्या नाता-रिश्ता है आपका उससे ?'

गिरीश ने बुड्ढे की बातों का कोई उत्तर न दिया। वह चुपचाप उसी दम उस क़स्बे से चला आया और जाने किस रहस्यमयी प्रेरणा से अभिभूत होकर उसने स्टेशन पर आकर लखनऊ का टिकट ले लिया।

—"लखनऊ क्यों जा रहे हो ?" उसका संशयी मन बार-बार पूछने लगा, पर गिरीश ने कोई उत्तर न दिया। उसने दूसरी बात कही, उसने अपने मन से पूछा —"कुछ याद है तुम्हें ? उसने शादी न करने की शपथ खाई थी, सो क्या हुआ फिर आखिर, शादी हो गई न उसकी ? और अब शायद बहुत सुख-चैन से अपनी घर-गिरस्ती लेकर रह रही है अपने पति-पुत्रों के साथ और शायद पिछला सब—अतीत की वह कहानी एकदम भूल ही गई होगी, शायद कुछ भी याद न रहा होगा उसे। देखो तो, संसार कितना विचित्र है ! आदमी क्या-क्या सोचता है और करता क्या है ! स्वार्थ ही सर्वोपरि है, बाक़ी सब तो कोरी भावुकता है। भावुकता एक दिन दफ़न हो जाती है और फिर यथार्थ के वातावरण के बीच पूर्ण ज़िन्दगी कटती है और आदमी उसी जिन्दगी के सुख-दुख को प्यार करने

लगता है और अति सीमित होकर रह जाता है और मर जाता है फिर।"

उसके मन ने सुनकर एक गहरी साँस ली और दुखी होकर बोला—"तुम्हे क्या मालूम कि उस पर क्या-क्या बीती ? तुम्हें क्या पता कि उसने कितना कष्ट पाया और किन विवशताओं के बीच वह ब्याह की बलिवेदी पर बैठी ! तुम तो प्रतिज्ञा करके भी उसके पास पहुँच नहीं पाये। शायद ठीक समय पर खँडहर में आकर खड़ी-खड़ी वह घंटों तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही होगी, फिर समय बीतता गया होगा, फिर बिलकुल निराश होकर आँखों से नीर बहाती, टूक-टूक कलेजा लिये लौट गई होगी। उस समय की कल्पना करो जरा, और मैं पूछता हूँ तुम आख़िर चाहते क्या थे ? क्या वह किसी प्रकार आत्महत्या कर लेती तब तुम खुश होते सुन कर ? शादी कर ली अगर तो क्या उसने कोई पाप किया?"

गिरीश ने मानो संत्रस्त होकर कहा—"नहीं-नहीं, उसने ठीक ही किया, उसने शादी करके कोई पाप नहीं किया और मैं तो उसे सुखी देखना चाहता था। मैं उसे सुखी देखकर सन्तुष्ट होऊँगा, मैं तो उसे-उसके बच्चों को आशीर्वाद देने ही जा रहा हूँ लखनऊ।"

तब उसके निर्बल हुए मन ने बहुत धीरे से पूछा—"बस केवल आशीर्वाद देने जा रहे हो और कुछ नहीं ?"

तो गिरीश ने मानो नाराज़ होकर कहा—"चुप रहो !" और सारी ताक़त से मन की उस मन्द आवाज़ को पैरों से कुचल दिया जैसे, और

खिड़की के उस पार, चलती ट्रेन से पीछे छूटते, खेतों को और बागों को एकटक होकर निहारते लगा।

... ...

घर के नौकर ने बाहर आकर नम्रता से कहा—"चलिये हुजूर, तशरीफ़ ले चलिये, भीतर बुला रही है आपको।"

मुश्किल से दो मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी—"नमस्ते, आप कहाँ से पधार रहे है ? कहिये, क्या काम है मुझसे ? क्या सहायता करूँ आपकी ? पहिले चाय मँगवाऊँ आपके लिये।"

बिलकुल मूढ होकर गिरीश उस सौम्य, शान्त, मुखश्री को देखता रहा। ओह ! कितने सालों के बाद आज इसे देख रहा हूँ—सब वही है—सब मानो ज्यों का त्यों है, केवल यह इतना लम्बा समय गुज़र गया है उन दोनों के बीच से। और, क्षण भर के लिए गिरीश का चित्त बुरी तरह चंचल हो उठा ; एक बार कहना चाहा—"महादेवी, मैं लौट आया हूँ, मैं तुम्हारा गिरीश, जिसे तुम 'देवता' कह कर पुकारती थीं।" पर उसने आत्म-संवरण किया और सहज स्वर में बोला—"आपने शायद मुझे पहचाना नहीं !"

"क्षमा कीजिये !"—नारी ने नम्रता से कहा—"कुछ परिचय तो दीजिये अपना ! शायद मै भूल गई होऊँ, याद आ जाय सब।"

गिरीश के मुख से अनजाने ही एक साँस निकल गई और उसने गिरी सी आवाज़ मे कहा—"क्या परिचय दूँ अपना ? मेरा नाम गिरीश है"

तब वह सौम्य महिला बार-बार गिरीश का मुख देखने लगी और जैसे उसे पहिचानने का प्रयत्न करने लगी और अन्त में संकोच से बोली

—"मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है कि कब और कहाँ आपको देखा है।"

तब दुख में डूबे गिरीश ने उसकी आँखों पर अपनी आँखें स्थिर करके पूछ—"तुम महादेवी हो न ?"

महिला चुप रही और उसने पलकें गिरा लीं तो दुख में डूबे गिरीश ने धीरे-धीरे कहा—"शायद सब भूल गई हो, शायद प्रयत्न करके बलपूर्वक भुला दिया है सब। पर विश्वास करो, मैं तुम्हें पिछली सब बातों की याद दिलाकर कष्ट पहुँचाने नहीं आया हूँ। तुम सुख से हो, यही देखने आया था। इतने सालों के बाद, तुम्हें अपने घर में—अपने परिवार के बीच सुखी देखकर मैं भी सुख मना रहा हूँ। और कोई काम न था तुमसे। और आज्ञा दो मुझे, चलूँ। नहीं, चाय नहीं पिऊँगा। अच्छा, तो अब चलूँ मैं ?"

और वह उठकर चलने लगा तो उस सौम्य, शान्त नारी ने डूबी-डूबी आवाज़ से कहा—"बैठ जाइये जरा।"

गिरीश फिर बैठ गया और नीचे कार्पेट पर बने हंस-मिथुन को निहारने लगा तो उस सौम्य नारी ने हौले से शान्त स्वर में कहा—"आपको धोखा हुआ है, मैं महादेवी नहीं हूँ।"

गिरीश ने जैसे झटका खाया हो, पलक मारते वह सिर उठाकर उसे देखने लगा स्थिर दृष्टि से—नहीं, धोखा नहीं है, यह महादेवी का ही मुख है—महादेवी का ही स्वर है !

परन्तु नारी, वह नतनयन होकर बोली—"जी हाँ, विश्वास कीजिये, मैं महादेवी नहीं हूँ। मैं महादेवी की छोटी बहिन हू और मेरा नाम कमला है। आपको धोखा हुआ है।"

तब गिरीश विक्षिप्तों की तरह कह उठा—"तुम महादेवी नहीं हो ! तब महादेवी कहाँ है ? कहाँ चली गई महादेवी ?"

नारी ने उसी तरह शान्त स्वर मे कहा—"मेरी दीदी कहाँ चली गईं, यह मैं नहीं जानती। जितना जानती हूँ, आपको बतला रही हूँ। शादी की रात को, ग्यारह बजे के क़रीब, अचानक दीदी की सखी दुलारी मेरे पास छत पर घबराई हुई आई। मैं शादी के लिए आये कपड़े सम्हाल कर रख रही थी कि दुलारी ने मुझसे काँपती आवाज़ में कहा—'तेरी दीदी हमेशा-हमेशा के लिए लोप हो गई कमला, घर में किसी को पता नहीं है। पर मैं जानती हूँ, चाची जी नीचे बेहोश पड़ी है और चाचा जी ज़हर ढूँढ़ रहे हैं। महादेवी अब नहीं लौटेगी, मैं जानती हूँ, वह कभी नहीं लौटेगी। कमला, जल्दी कर, साहस बाँध तू, चाचाजी की इज़्ज़त-आबरू बचा ले बहिन, नहीं तो वह सचमुच जहर खा लेंगे। हाय, अभी, घड़ी भर में, सारे घर का सर्वनाश हो जाएगा !' और रोने लगीं वहीं बैठ कर तो मैंने डर कर पूछा—'मेरी दीदी कहाँ चली गईं, तुम ज़रूर जानती हो, तुमसे वह कोई बात नहीं छिपाती थीं, बोलो, क्यों चली गईं वे ? हाथों में मेंहदी लगाये-ब्याह की चूनर पहने इतनी सी देर में कहाँ ग़ायब हो गईं वे ? और मुझसे तुम क्या करने को कह रही हो, क्या साहस करूँ मैं, क्या करना होगा मुझे ?'

"दुलारी ने उसी तरह आँसू बहाते कहा—'महादेवी कहाँ चली गई, यह तो मैं भी नहीं जानती। मुझे तो पहले से ही डर था, मुझसे कहा था उसने कि वह शादी हरगिज़ नहीं करेगी, वही हुआ आख़िर। मैं उसे किसी तरह रोक नहीं पाई, कोई भी उसे रोक नहीं सकता था। पर

तू विश्वास कर कमला, किसी पाप के लिये वह नहीं गई है, मैं इतना जानती हूँ, वह तो किसी बहुत बड़े काम के लिए गई है और उसका 'देवता' है कोई, उसी देवता की पुकार पर वह चली गई है। और तुझे यही करना है कि तू अब माँ-बाप की लाज बचा ले, तू अब महादेवी की जगह शादी करने को तैयार हो जा कमला ! बोल इतनी हिम्मत करेगी न ? उस घर को सर्वनाश से बचायेगी न ?'

"मैंने अनायास ही कह दिया—'मैं अपने बाबूजी के लिए, अपनी अम्माँ के लिये जान भी क़ुर्बान कर दूँगी दुलारी दीदी, मैं तैयार हूँ।' तो दुलारी दीदी ने मुझे कलेजे से लगा लिया और फूट-फूट कर रोईं।—इस तरह किसी को कुछ पता न चला और मैं अपनी दीदी की जगह, डोली मे बैठ कर, ससुराल चली आई। मेरे सास-ससुर और मेरे पति भी आज तक नहीं जानते कि मैं महादेवी नहीं हू—उनकी छोटी बहिन कमला हूँ। सुना कि बाबूजी फिर उसी दिन अम्माँ को लेकर काशी चले गये और फिर आज तक मेरे पास न आये, न मैं ही फिर कभी लौटकर अपनी जन्मभूमि तक जा सकी। जाती किसके पास, वहाँ था ही कौन ? बस यही हमारी कहानी है। पर आप कौन हैं ? क्या आपही मेरी दीदी के वह 'देवता' हैं जिनकी पुकार पर उन्होंने सब कुछ तज दिया था ? पर मेरी दीदी का क्या हुआ फिर, आप भी नहीं जानते ?"

हतबुद्धि बने गिरीश ने साँस खींचकर कहा—"हाँ, मैं ही वह अभागा हूँ, मैं ही इस पूरे अनर्थ का मूल हूँ। मै समय पर पहुँच नहीं सका। पुलिस के हाथों पड़ गया और इतनी सालों तक जेलों में बन्द था। कैसे जान पाता कि महादेवी का क्या हुआ और महादेवी कहाँ चली गई।

पर वह दुलारी कहाँ है, वह महादेवी की सखी, उससे मेरी भेंट हो सकेगी ? शायद उसे कुछ मालूम हो ।"

कमला ने दुखी स्वर में कहा—"तीन बरस हुए, दुलारी दीदी की मौत हो गई प्रसूति में । मुझसे फिर बीच में एक बार उनसे और भेंट हुई थी । तब बतलाया था कि एक बुढ़िया नौकरानी दीदी के साथ जाया करती थी । आखिरी बार भी उस बुढिया को दुलारी ने पीछे वाले दरवाज़े से पानी में भीगते जाते देखा था । वह बुढिया फिर हवेली में लौटकर नहीं आई, उसी रात वह भी ग़ायब हो गई । वह पड़ोस के किसी नगला की थी, इतना मुझे भी याद है । भगवान् जाने, वह बुढ़िया अब जिन्दा भी है या मर गई । आप तो उसे पहिचानते होंगे ?"

"हाँ, उसे पहिचानता हूँ ।"—गिरीश ने कहा—"जैसे भी होगा, उस बुढ़िया का पता लगाऊँगा । शायद जिन्दा हो वह, शायद कुछ बतला सके । अच्छा, अब मैं चलूँ । नमस्ते ।"

कमला उसे बाहर के गेट तक पहुँचाने आई तो उसने वहीं खड़े-खड़े कहा—"दीदी का कुछ पता चले तो मुझे ज़रूर आकर बताइयेगा । मेरे पास फिर आयेंगे न ?"

"आऊँगा ।"—गिरीश ने बिना उसकी ओर देखे कहा और तेज़ी से आगे बढ़ गया...।

...बड़ी कठिनता से उस बुढ़िया का पता लगा । वह अतिशय वृद्धा हो गई थी और बिलकुल मरणासन्न थी । लड़का-लड़की कोई न था उसके । अकेली विधवा भतीजी थी, उसी के घर में जिन्दगी की आख़िरी साँसें गिन रही थी । गिरीश पहुँचा, उस समय वह भतीजी भी घर पर न थी,

कहीं काम पर गई हुई थी और बुढिया गूदड़ लपेटे पड़ी हाँफ रही थी बुरी तरह। पहिले तो उसने गिरीश को पहिचाना ही नहीं, बहुत याद दिलाने पर, महादेवी की बात उठाते ही उसने भर्रायी आवाज में कहा कि वह कुछ नहीं जानती। गिरीश थोड़ी देर चुप रहा फिर उसने आक्रोश से कहा—"अगर तूने मुझे सब सच-सच न बतलाया तो मैं अभी तेरा गला घोंट दूँगा।" बुढ़िया ने आँखें बन्द किये ही हाँपते-हाँपते कहा—"मैं तो यों ही मर रही हूँ बेटा। भला ही करोगे जो मेरा गला घोंट दोगे। जल्दी छुटकारा पा जाऊँगी दुखों से।"

तब गिरीश ने खिन्न होकर अनुनय के स्वर में कहा—"तुम मुझे 'बेटा' कह कर पुकार रही हो, कुछ तो दया करो मेरे ऊपर। चिता पर चढ़ने वाली हो, इस समय तो झूठ मत बोलो। भगवान् को मानती हो न, तुम्हें भगवान् की सौगन्ध है, मुझे इतना ही बतला दो कि महादेवी कहाँ गई, उसका क्या हुआ फिर ? देखो, मैं तुमसे विनती कर रहा हूँ, मैं और किसी से न कहूँगा—तुम्हारा कुछ अनिष्ट न करूंगा, मेरा यक़ीन करो माँ !"

बुढ़िया ने एक बार आँखे चीर कर गिरीश को ताका, एक बार चारों ओर नज़र घुमा कर देखा, फिर धीरे-धीरे कहने लगी बड़े कष्ट से—'भगवान् की सौगन्ध दी है, तो, सुन लो। भगवान् के सिवाय इस बात को और कोई नहीं जानता है कि बिटिया का क्या हुआ। अब मैं तुम्हें बतला रही हूँ। डर नही है अब, चाहे जिससे कह देना। पर किसी से तुम कहोगे ही क्या, बेटा, महादेवी अब इस संसार में नही है। कोई उस की धूल भी नहीं पा सकेगा अब। तुम्हे तो याद होगा बेटा, ब्याह की रात मेंह बरसने लगा था। उसी बरसते मेंह मे मुझे साथ लेकर वह तुमसे मिलने गई थी।

उसी खँड़हर में, उसी आधी टूटी तिदरी में, अँधेरे में खड़े हम दोनों काँप रहे थे कि भगवान् अगर किसी को पता लग गया तो क्या हाल होगा ! बिटिया ने मुझे एक बार हवेली में भेजा कि देख आऊँ कि कोई उसे खोज तो नहीं रहा है—कोई पूछ तो नहीं रहा है। मैं हवेली में लौट आई। काम की भीड़भाड़ में किसी ने बिटिया को याद न किया। पानी बहुत ज़ोर पकड़ गया और मैं कोने में खड़ी इन्तज़ार करती रही कि मेंह ज़रा रुके तो उसके पास पहुँचूँ। जाऊँ-जाऊँ कर रही थी कि बेटा, बड़ा भारी ग़ज़ब हो गया। वह खंडहर—वह टूटी तिदरी—सोलह धार बरसते पानी मे वह सब का सब भड़भड़ा कर नीचे बैठ गया ! बड़े ज़ोर से धमाका हुआ। क्या गिरा-क्या खसक पड़ा ? —सबने घबराकर कहा और फिर सबने कहा कि कुछ नही —खंडहर बैठ गया। किसी ने न जाना कि उन पुरानी इँटों के ढेर मे घर की लक्ष्मी दब गई किसी का इन्तजार करती। मैं—मेरी क्या हालत हुई होगी, सोचो तुम ! बार-बार आकुल होकर चिल्लाने को होती कि अरे दौड़ो बचा लो सब कोई, खंड़हर में बिटिया रानी दब गई है, पर मेरी जुबान न खुली। जुबान खुलती, सब हाल मालूम होता तो ठाकुर साहब मेरी खाल उतरवा लेते। इन पापी प्राणों के मोह से मैं कुछ न बोली और पानी रुका तो उसी रात में हवेली से निकल गई चुपचाप। बेटा, महादेवी तो उसी रात स्वर्ग चली गई, इँटों के नीचे दबकर। तुम जाने कहाँ थे ? तुम अगर थोड़ी देर पहले आ जाते ! हाय भगवान्, तब से इस पाप के बोझ से मेरी छाती दबी रही और साल पर साल बीते, यह पत्थर मेरी छाती से न हटा। आज मरती बेला मेरे भाग्यों से ही तुम यहाँ आ गये। आज मानो मेरी छाती हलकी हो गई, तुमसे

सब कह कर। हे नारायण, इतना दया और करो, अब मुझे जल्दी से उठा लो !"

बुढ़िया के गांव से पैदल चल कर गिरीश उस छोटे-से स्टेशन पर आ खड़ा हुआ। वह जैसे बिलकुल शून्य हो गया था और सोच नहीं पा रहा था कि क्या करे अब, कहाँ जाय अब ? पास में एक पैसा तक नहीं। निरुद्देश्य होकर वह प्लेटफार्म पर चहलकदमी करने लगा तो कोने में पड़ी बेंच पर बैठा एक युवक उसे बार-बार घूरने लगा। दो बार गिरीश की उससे दृष्टि मिली और फिर वह जाने कब उठ कर यहाँ आ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे टहलते गिरीश को रोक कर उसने पूछा—"आपका शुभ नाम क्या है ?"

गिरीश ने तनिक-सा हंसकर कहा—"क्या करोगे मेरा नाम पूछ कर ? गिरीश नाम है मेरा।"

तो उस युवक ने पलक मारते नीचे झुककर गिरीश के चरण छू लिये और उन्मुक्त प्रसन्नता से बोला —"मुझे नहीं पहचाना आपने, मैंने पहचान लिया फ़ौरन दादा, मैं इन्द्र हूँ।"

इन्द्र ! एक छोटा-सा गरीब बालक—जो 'दल' में उसके साथ था, खबरें लाया करता था दौड़-दौड़ कर, जिसे पुलिस ने पकड़ कर एक बार बेतो से पीटा था, पर उससे कुछ कहलवा न सकी थी; वही इन्द्र है यह ! पहचान कर गिरीश ने बाँहें फैला दीं और उसे बाहों मे कस लिया और गद्‌गद् हो कर बोला—"तू इतना बड़ा हो गया रे ! क्या करता है आजकल ?"

इन्द्र ने पुलकित हो कर कहा—"प्रकाशन करता हूँ—प्रकाशक हो गया हूँ दादा, पर आप तो—सुना था—!"

"मर गया था, क्यों ?"—गिरीश ने हंस कर कहा—"ग़लत समझा तूने वह गिरीश चन्द्र घोष था—जी० सी० घोष। जेल में उसे बैल की जगह पर कोल्हू में लगा दिया गया था। सारे दिन कोल्हू खींचते-खींचते वह पागल हो गया, फिर एक दिन घानों पर सिर पटक कर मर गया बेचारा ! तू रहता कहाँ है भाई ?"

"दिल्ली में। यहाँ पड़ोस के गाँव में मेरी एक चचेरी बहिन ब्याही है, उसकी लड़की की शादी में आया था। आपसे भेंट हो गई। कितनी खुशी लग रही है आज, दादा ! मैं टिकट ले आऊं, गाड़ी का वक्त़ हो गया।"

...और इस प्रकार वह इन्द्र का अतिथि हो गया। कितनी सेवा कर रहा था इन्द्र, कितने आदर से उसे रख रहा था अपने पास और कितना प्रसन्न था अनायास ही अपने खोये हुये दादा को पाकर !

पर गिरीश जैसे मन ही मन कुंठित होने लगा। आखिर कब तक ? कब तक वह इस तरह मेहमान बनकर इन्द्र की रोटियाँ तोड़ता रहेगा ? क्या उसके जीवन की अब कोई उपादेयता ही नहीं है ? क्या करे वह. ? क्या कर सकता है वह ? किस काम का आदमी है वह ?...

इन्द्र के दो छोटे-छोटे बालक थे। उनकी परीक्षा शुरू हो रही थी। सो दोनों साफ़-सुथरे कपड़े पहन कर यहाँ आये और ताऊ जी के चरण छू कर आशीर्वाद लेकर स्कूल चले गये। फिर मालती आई यहाँ—इन्द्र की भोलीभाली पत्नी। गिरीश के पलंग पर पॉयते, घर के धुले हुए कपड़े रख कर लजा कर बोली—"दादा, पानी गरम कर दूँ, आप स्नान करेंगे न ?"

गिरीश जैसे बहुत निर्बल हो गया उस बेला। इतना ममत्व, इतना स्नेह, जैसे उससे सहा नहीं जा रहा था। भरे गले से बोला—"इन्द्र कहाँ है ?"

मालती ने लजाते-लजाते प्रसन्नता से कहा—"आपके लिये बादाम का हलवा बना रहे हैं। कहते थे, दादा मेरे बहुत कमजोर हो गये हैं, तू मेरे दादा की ठीक तरह से सेवा नहीं कर रही है—तुझे कुछ नहीं आता! दादा, मैं बहुत मूर्ख हूँ, मुझे सचमुच कुछ नहीं आता। पर दादा, मेरी बनाई रोटी तो पसन्द आई है आपको—वे मानते ही नहीं हैं!"

"चलो जल्दी!"–भीतर से एक तेज आवाज सुनाई दी और मालती लपक कर भागी।

यह आनन्द से भरा घर, ये मासूम बच्चे, यह मातृत्व भरी नारी, यह सहोदर-सा भाई—यह प्यार! आज शायद आँसू निकल आयेंगे, गिरीश से संवरण नहीं हो पा रहा था कि इन्द्र ने चाय की ट्रे और हलवा ला रक्खा सामने और खुश होकर बोला—"दादा, तुम हलवा खाओगे तो कहोगे कि हाँ, कोई चीज है!"

गिरीश पल-भर लेटा-लेटा उसे निहारता रहा फिर उठ बैठा हाथों का जोर लगाकर और स्वर को संयत करके बोला—"अब तुम मुझे बिदा कर दो भाई, इस तरह कब तक तुम लोगों को कष्ट देता रहूँगा!"

"हरगिज नहीं!" इन्द्र ने उत्तेजित स्वर में कहा—"अब मैं तुम्हें यहाँ से जाने नहीं दूँगा कहीं। जाओगे अगर तो तुम्हारे आगे लेट जाऊँगा—मेरी छाती पर पैर रखकर ही जा सकोगे और तुम जाना कहाँ चाहते हो—कहाँ जाओगे तुम, यह तो कहो! और यह तुम्हारा अपना घर नहीं है

क्या ? एक बार मुँह से कहो कि—इन्द्र, तू मेरा कोई नहीं है—तू मेरा भाई नहीं है, कहो !"

गिरीश ने तनिक-सा हँसकर कहा—"पर भाई मेरे, यहाँ कोई काम भी तो हो मेरे लिए, कि केवल भोजन करना ही 'धर्म' बना लूँ अपना ?"

इन्द्र ने प्रसन्नता से कहा—"काम मै बतलाता हूँ तुम्हें। अपनी जीवनी लिख डालो। तुम्हारी यह रोमांचकारी, बलिदानों से भरी कहानी मै प्रकाशित करना चाहता हूँ। पर दादा, इस कहानी में मेरा नाम लेना मत भूल जाना। तुम्हारे नाम के साथ मेरा नाम छपेगा तो धन्य मानूँगा अपने को। और दादा, वह घटना ज़रूर लिखना तुम—वह जो पाँच-छः गाँवों को, सूखा पड़ने पर, अन्न पहुँचाते रहे थे घर-घर। फिर हैज़ा फैला था, उसकी करुण कथा। फिर तुम्हें क़ै-दस्त होने लगे थे सेवा करते-करते। मैं वहाँ कोने में खड़ा-खड़ा रो रहा था तो तुमने मुझे हटाने को कहा था—याद है न ? और तुम अच्छे हो गये थे, तुमने कहा था कि 'मैं मर नहीं सकता।' यह सब लिखना और वह घटना भी ज़रूर लिखना, वह जो एक शराबी युवक ने एक कुमारी लड़की की इज़्ज़त लूट ली थी और उसे बाँधकर ले आये थे तुम्हारे साथी और फिर वह मर गया था। अपने घर जाकर खून की क़ै करके; तो तुम उसकी विधवा के पास गये थे तुमने कहा था कि 'पति को लौटा कर नही ला सकता, भाई को ले लो बदले में'—आज से तुम मेरी बहिन हो और बराबर उसकी सहायता कर रहे थे और दादा, उस लड़की की कहानी तो ज़रूर ही लिखना, जिसने अपने घर का सारा ज़ेवर 'दल' की सहायता के लिए दे दिया था, जो एक दिन खाना परोसने आई थी।

कैसा दपदप करता था उसका चेहरा! मुझे आज तक याद है, क्या नाम था उस दीदी का ?"

गिरीश ने हौले से कहा—"महादेवी ।"

"हाँ-हाँ, यही नाम तो था उसका। ओह, एकदम देवी थी वह तो! भगवान् जाने, उन गाँव वालों का अब क्या हाल होगा—जो हमारे लिए, हमे बचाने के लिए जान हथेली पर लेकर पुलिस से लड़े थे और वह तुम्हारी 'विधवा बहिन' जाने कहाँ होगी—जिसने हम सबके हाथों में राखी बाँधी थी और वह दीदी—महादेवी, वह जाने कहाँ होगी अब! इन सबको अपनी लेखनी से अमर कर दो दादा!"

गिरीश ने हँसकर कहा—"तुम बहुत भावुक हो इन्द्र, यह नहीं सोचते कि इससे लाभ क्या होगा। देश अब स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता कैसे मिली—स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किसने क्या किया—इसे कौन सुनना चाहेगा अब ? अब तो देश को नई योजनायें चाहिए, आगे बढ़ने की राह चाहिए—रहनुमा चाहिए। अतीत की बातें दुहराने से क्या होगा ? यह सब तो व्यर्थ है भाई! इस साहित्य का कोई मूल्य न होगा।"

इन्द्र ने जोश में भरकर कहा—"यह जो साहित्य के नाम पर प्रतिदिन रोमांसों से भरी कहानियाँ और स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों की खुली व्याख्या वाले उपन्यास प्रकाशित हो रहे हैं और जनता इन्हें चाव से पढ़ती है—रस ले-लेकर, यह सब सार्थक है और आपकी यह कहानी, यह तथ्यों भरा बलिदानों का सत्य इतिहास—यह सब व्यर्थ है! और तुम कहते हो कि पढ़ेगा कौन इस किताब को ? सब पढ़ेंगे—सब पढ़ेंगे। पूछते हो, क्या लाभ होगा इससे ? बहुत लाभ होगा। हमारी भावी पीढ़ी कम से कम यह तो जान

सकेगी कि पिछली पीढ़ी ने कितना क्या किया है, कितने बलिदान दिये है निःस्वार्थ भाव से मातृभूमि के लिए। मैं पूछता हूँ कि आखिर साहित्य का लक्ष्य क्या है ? क्या मन की वासना को जागरूक करना ही साहित्य का चरम उद्देश्य है ? क्या विरह और मिलन के गीत ही साहित्य की निधि हैं ? या वियोगान्त नाटक ही एकमात्र साहित्य की चरम परिणिति है ? क्या ज़िन्दगी की घुटन, ज़िन्दगी की ऊबन और आज की आर्थिक समस्याएँ ही चित्रित करनी चाहिए ?"

इन्द्र को उत्तेजित देखकर गिरीश मन्द-मन्द हँसता रहा, फिर उसने हौले से पूछा—"तुम्हें कैसा साहित्य पसन्द है ?"

"साहित्य तो मेरी दृष्टि से वही है जो हमें आगे बढने की प्रेरणा दे, जीवनी-शक्ति दे हमें। सामाजिक क्रान्ति करने वाला, संस्कृति का रक्षक और पूर्वजों की गौरव गाथा कहने वाला साहित्य ही मेरे विचार से वास्तविक साहित्य है। अच्छा, मेरा यह दृष्टिकोण क्या ग़लत है दादा ?"

"ग़लत तो नहीं है," गिरीश ने मानों कुछ देखते हुए कहा—"लेकिन समय आ रहा है कि यह सब भी प्रायः निरर्थक हो जायेगा। आज से सौ साल बाद, तुम ज़रा कल्पना करो, तुम्हारे वर्तमान साहित्य का कितना भाग—कितनी पंक्तियाँ जीवित रह पायेंगी ! दुनिया बहुत तेज़ी से आगे बढ रही है। यह विज्ञान का युग है, आदमी चन्द्रमा तक दौड़ लगा रहा है, मंगल-ग्रह की यात्रा के लिए सचेष्ट है। और आज न सही कल, आदमी के ये सब संकल्प सत्य हो जायेंगे, तो सोचो, क्या होगा फिर ? तुम्हारे साहित्य का क्या मूल्य रहेगा और किस संस्कृति की रक्षा करेगा तुम्हारा यह साहित्य ? यह साधारण प्रश्न नहीं है, इस ओर से हम आँखें नहीं मूँद

सकते। आदमी भावुकता से कोसों दूर होगा और तब तुम्हारी ये सारी भावनाएँ मज़ाक की चीज़ हो जायेंगी। संसार की छोटी-बड़ी सब संस्कृतियाँ बदल जायेंगी और राष्ट्रवाद बहुत ही तुच्छ वस्तु हो जायेगा। आज जो तुम्हे इतना महत्वशील लग रहा है, हो सकता है, कल इसकी कुछ भी क़ीमत न रहे। कल्पना करो, आदमी भावनाओं से बिलकुल कोरा है तो उसके लिए शेली या मिल्टन या कालिदास या टैगोर यहाँ तक कि सपूर्ण साहित्य की क्या उपादेयता रहेगी ? और यह अवश्यम्भावी है। हवा का रुख ऐसा ही है। बादल से निकलती धूप की तरह वह दिन दौड़ता आ आ रहा है कि आज की सारी समस्याएँ, सारी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक मान्यताएँ विलुप्त हो जायेंगी—यह सब कुछ न रहेगा—कुछ न बचेगा। यह संपूर्ण भूमण्डल, इस भूमण्डल के संपूर्ण राष्ट्र और संपूर्ण मानव समाज जब एक 'इकाई' के रूप में होगा और जब इस एक इकाई का सौरमंडल के समस्त ग्रहों और उपग्रहों के साथ सीधा संबंध हो जायेगा—तब हमारी इस 'इकाई' की संस्कृति क्या होगी ? और इस नये युग के नये मानव समाज में तुम्हारे इस साहित्य का क्या स्थान होगा ? कौन देखेगा इसे—इसे कौन पढेगा ?"

इन्द्र घड़ी भर स्तब्ध बैठा रहा, फिर उसने आशंकित होकर पूछा—"तब तो मेरी सारी मेहनत बेकार है ! मैंने तो अपनी ज़िन्दगी इसी साहित्य की खातिर खपा दी है, क्या इस श्रम की कोई उपादेयता नहीं है ? सब ग़लत किया है मैंने ?"

"ग़लत कुछ नहीं है।" गिरीश ने शान्तस्वर में कहा—"मेरा दृढ़ विश्वास है; सत्प्रेरणा से और सद्भावना से किया गया कोई भी कार्य न

न तो व्यर्थ होता है और न ग़लत। तुम ने जो कुछ किया है या जो कुछ कर रहे हो उसके पीछे यदि लोक-कल्याण की भावना है तो वह कार्य निश्चय ही अच्छा है, समझ लो!"

इन्द्र कुछ कहना ही चाहता था कि उसी समय बाहर से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा और "कौन है?" कहता हुआ वह उठ गया फ़ौरन।

मालती आई और ठंढी हुई चाय उठा ले गई। गिरीश फिर लेट गया और आँखें मूंद कर सोचने लगा—"जीवनी लिखूं अपनी? कहाँ से 'अथ' होगा? एक छोटा-सा गाँव, छः-सात बरस का बालक, गांधी जी को देखने के लिए आतुर—" और सर्राटे के साथ जिन्दगी की फ़िल्म चलने लगी गिरीश की मुंदी आँखों के आगे।...

...दूसरे दिन, शाम को जब इन्द्र अपने प्रेस से लौटा तो एक अन्य व्यक्ति भी उसके साथ था। इन्द्र बहुत ख़ुश था और ख़ुशी-ख़ुशी उसने गिरीश से कहा—"देखो, किसे पकड़ लाया हूँ आज!"

उस युवक ने आगे कहा बढ़कर गिरीश के चरणों में अपना शीश झुकाया और खड़ा रहा सामने हाथ जोड़े तो गिरीश ने अचकचा कर पूछा—"अपना नाम तो बतलाइये, परिचय दीजिये कुछ।"

"अरे दादा, यह सत्यनारायण है तुम्हारा!"

"सत्यनारायण!" गिरीश ने हाथ पकड़ कर उसे अपने पास खींच लिया पलंग पर और स्नेह से पीठ पर हाथ फिराकर बोला- ज़िन्दा है! अरे, तूझे तो, सुना था मैंने, पुलिस ने गोलियों से भून डाला था

"मेरी जान इतनी सस्ती नहीं है। बाक़ायदा ज़िन्दा हूँ, लेकिन आप भी तो, सुना था, मर गये थे।"

गिरीश ने उसकी पीठ ठोंककर कहा—"हम लोग भूत हो गये है शायद।" और वह ठहाका मार कर हँस पड़ा। सत्यनारायण ने अपनी हँसी रोक कर कहा—"एक युग हो गया, आपकी हँसी सुने। आज मैं जाने किस का मुँह देखकर उठा था, अचानक ही इन्द्र मिल गया इतने दिनों बाद और फिर आप—आपके दर्शनों की तो कोई आशा ही नहीं थी और, आज मैं आपके पास बैठा हूँ!"

"लो, नाश्ता करो भाई!" इन्द्र ने अपने पीछे खड़ी मालती की ओर इशारा करके कहा—"यह मेरी पत्नी है।" और मालती से बोला—"यह मेरा प्रिय बन्धु है। दादा, मुझे तो आज दंडी कवि का 'दशकुमार चरित' याद आ रहा है—वैसे ही तो हम सब इकट्ठे हो रहे है! सत्तो भाई, अब तू सुना दादा को वह कहानी, जो मुझे प्रेस में सुना रहा था। हाय रे इन्सान और हाय री नारी!—मालती, तुम जाओ, भोजन का प्रबन्ध करो!"

सामने गोल मेज़ पर, नाश्ता रक्खा रह गया। सत्यनारायण अपनी कहानी सुनाता रहा और ये दोनों सुनते रहे। सत्यनारायण ने आगे कहा—"आपने माना नहीं, हम लोगों को तो उमाकान्त पर पहले से ही सन्देह था और उसी ने हमारा सारा भेद पुलिस को दिया था। पर आप तो अन्त तक उसका विश्वास ही करते रहे। महादेवी दीदी के पास आप जब-जब गये, उसी को साथ ले गये। वह पुरा आस्तीन का साँप बन चुका था। मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ। वह दीदी के रूप पर मुग्ध हो गया था। दीदी जब

हमारे यहाँ एकबार आयी थी तो उसने मुझ से चुपके से कहा था कि इसे मैं जानता हूँ—इसके साथ मेरी शादी ठहर रही थी, जब बी० ए० में था और वह बड़ी विचित्र दृष्टि से दीदी को ताक रहा था। दीदी को घर से निकालने की आपकी सारी योजना उसे मालूम थी और आपको अपनी राह का काँटा जान उसने आप का सारा प्रोग्राम पुलिस को बता दिया और आप पकड़े गये और उधर वह नीच ठीक समय पर वहाँ क़स्बे में पहुँच गया और दीदी को अपने साथ ले आया। अँधेरे मे वे उसे पहिचान न सकी होंगी और उस पापी के चंगुल में फंस गयीं शायद! पर जिस घर मे लाकर दीदी को उसने रक्खा, उसी घर के किरायेदार एक नवयुवक से हमें सब मालूम हो गया। तो मैं और विभूति ढूँढते-ढूँढते वहाँ जा पहुँचे। उमाकान्त भीतर कमरे में आँखें मूँदे लेटा था, हम उसके पास जा खड़े हुए। सोचा कि अब यह बच कर कहाँ जायेगा, आज-अभी उसके सारे कुकृत्यों का फ़ैसला कर देना है। उमाकान्त उठकर खड़ा हो गया और उसका चेहरा हम लोगों को सामने देख कर सफ़ेद-जर्द हो गया था। हम उसकी छाती को निशाना बना कर दो क़दम पीछे हटे कि पलक मारते जाने किधर से दीदी आ गई और उमाकान्त की छाती के आगे खुद खड़ी हो कर बोली कातर स्वर में—"पहले मुझे मार दो!"

विभूति बोला—"तुम हट जाओ दीदी, हमें अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेने दो, इस नीच आदमी को अब ज़िन्दा रहने का कोई हक़ नहीं है। हट जाओ दीदी।"

तो दीदी ने जाने कितनी करुण दृष्टि से हम लोगों को निहारा और दोनों हाथ हिलाती, भय से काँपती बोली—"नहीं-नही, इसे मत मारो,

यह मेरा एकमात्र सहारा है—मेरा अवलम्ब है। मुझ पर रहम करो तुम लोग, आँचल पसार कर भीख माँग रही हूँ इसके प्राणों की। दया करो भाइयो, रहम करो मुझ पर!"

हम दोनों के हाथ शिथिल हो गये। हाय, दीदी ने यह क्या किया! हाय, दीदी इसकी पत्नी बन गई हैं! पता नहीं, कैसे, क्या हुआ होगा? भगवान् जाने, किन विवशताओं के बीच दीदी ने उसके आगे आत्म-समर्पण कर दिया। बहुत ही दुख लगा कि ऐसी तेजोमयी नारी एक नारकीय कीड़े से बँध गई है!—विवश होकर चले आये दुख मनाते। हम लोग वहाँ से बच निकले, पर आगे चलकर बस्ती के पास एक गाँव में फँस गये पुलिस के फन्दे में। फ़रार असामी थे, पुलिस ने हमें चारो ओर से घेर लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलीं और विभूति वहीं ढेर हो गया। विभूति के साथ एक परदेशी युवक भी मारा गया, वह हमें बचाने आया था। इस प्रकार पुलिस ने मुझे भी मरा समझ लिया। पर मैं किसी प्रकार बच निकला और सीधा नेपाल भाग गया और वहीं रह गया फिर सालों तक!"

इतनी देर से निस्तब्ध बैठे गिरीश ने मानो बल लगाकर कहा—"फिर कहाँ गया उमाकान्त?"

"उमाकान्त दूसरे ही दिन वहाँ से निकल भागा। कहाँ गया वह दीदी को लेकर, कोई नहीं जानता। पर दादा, आज मैंने कश्मीरी गेट पर एक आदमी को किताबों की दूकान पर खड़ा देखा था। उसकी हुलिया उमाकान्त से बहुत मिलती-जुलती थी। कहो तो, कल उस दूकान पर जाकर पता लगाऊँ।"

"हो आना।" गिरीश ने तटस्थ भाव से कहा और फिर प्रसंग बदलने के लिये पूछा—"तुम आज कल करते क्या हो ?"

"कहानियाँ लिखता हूँ और उपन्यास। साहित्य की सृष्टि कर रहा हूँ। अपनी किताबों के सिलसिले में ही यहाँ आया था और अचानक ही इन्द्र के प्रकाशन संस्थान में जा पहुँचा और देखिये, यहाँ आ गया फिर! अरे भाभी, पाइप किधर है तुम्हारा, जरा हाथ-मुंह तो धो लूँ।" मालती आकर उसे भीतर ले गई।

...रात को तीनों बन्धुओं ने साथ बैठ कर खाना खाया और फिर पास-पास ही लेट रहे तीनों; फिर बड़ी रात तक अतीत की स्मृतियों को दुहराते रहे—दुख-सुख मनाते रहे, फिर जाने कब सो गये...सत्यनारायण सुबह उठकर अपने डेरे पर चर्खेवालान चला गया फिर आने का वायदा करके और इन्द्र भी नहा-धोकर अपने प्रेस चला गया। गिरीश यहाँ अकेला रह गया।

और तब उसका मन उमड़-घुमड़ कर महादेवी पर जा पहुँचा कि क्या हुआ यह ? ठीक ही हुआ!, गिरीश ने शान्त भाव से कहा तटस्थ होकर—'जीवित है, मुझे इतने से ही सन्तोष है। मेरे कारण उसने प्राण नहीं गंवाये—यही क्या कम है ? अब वह कहीं भी हो, सुख से रह रही होगी, यह निश्चित है। और उमाकान्त ने जो कुछ भी भला-बुरा किया, उसी के लिये किया। तो वह उसे तो अच्छी तरह रख ही रहा होगा। सारे जतन से महादेवी को सुखी करने की चेष्टा की होगी उसने और नारी को जो कुछ चाहिये, उमाकान्त से वह सब पाकर अब महादेवी भी उसे स्नेह करने लगी होगी। पिछला सब कौन याद रखता है ? और स्त्री का

तो स्वभाव ही भगवान् ने ऐसा बनाया है, वह सब कुछ भूल गई होगी। अच्छा ही हुआ सब—अच्छा ही हुआ। यों महादेवी के जीवन की सार्थकता हो गई, किसी की पत्नी बन कर !'

'और, सबने भी अपनी-अपनी राह खोज निकाली। इन्द्र प्रकाशक हो गया, सत्यनारायण लेखक बन-गया—सब कुछ न कुछ हो गये, किसी न किसी किनारे से जा लगे। जो साथी फाँसी चढ़ गये—जेल मे ही मर गये, वे धन्य है। अकेला मैं ही कुछ न हो सका, अकेला मेरा ही जीवन सब ओर से व्यर्थ दीखता है। मरा भी नहीं मैं और समझो ज़िन्दा भी नही हूँ। यह कष्ट तो पिछले सब कष्टों से बढ़-चढ कर है—कोई राह ही नहीं दीखती आगे !'...सारे दिन गिरीश करवटें बदलता रहा और एक अजीब-सी घुटन—एक बेचैनी महसूस करता रहा। यहाँ तक कि शाम हो गई और और रोज़ की तरह दरवाज़े पर इन्द्र की आवाज़ सुन पड़ी। गिरीश ने दूर से ही देखा, आज भी उसके साथ एक आदमी है। एक बार मन ही मन सोचा—'आज फिर कोई, दशकुमार जैसा, पुराना साथी मिल गया क्या, या उमाकान्त को ही पकड़ लाया यह ? उमाकान्त ! महादेवी का पति !' धक्का-सा लगा।

लेकिन नहीं, यह कोई दूसरा व्यक्ति था। ये दोनों यहीं आ बैठे गिरीश के पास तो इन्द्र ने उस से पूछा—"सुनाइये तिवारी जी, क्या निर्णय रहा कोर्स-कमेटी का ?"

पुस्तक-प्रकाशक तिवारी ने शान्ति से कहा—"वही हुआ भाई, जिसकी उम्मीद थी श्यामलाल की चारों पुस्तकें कोर्स के लिये मंजूर हो गइ। हम दोनों की एक भी किताब नही ली गई। श्यामलाल तो पूरा घाघ है,

को दी थी, यों ही मंजूर नहीं हुई थी मेरी किताबें !"

इन्द्र ने स्वर को दबा कर कहा—"वह फ़ारमूला इस साल काम में क्यों नहीं लाये ?"

तिवारी घड़ी भर चुप रहा, फिर उसने साँस लेकर कहा—"इसका बड़ा भारी क़िस्सा है; सुनोगे ?"

"ज़रूर सुनूँगा। चाय आ रही है अभी। मालती, चाय लाओ, जल्दी ! चलो, तुम शुरू करो तब तक।"

तिवारी फिर गिरीश की ओर मुखातिब हो गया और जाने कैसी भावना से घिरकर कहने लगा धीरे-धीरे—"भाई जी, क्या सुनाऊँ आपको ? बड़ी अजीब-सी बात है, आप शायद यक़ीन न करेंगे। पर घटना क़तई सच है। तक़रीबन साल भर हुआ, हमारी कॉलोनी में एक औरत आई। कोई नहीं जानता था कि वह कहाँ की रहने वाली है, घर-द्वार कहाँ है उसका और क्या करती है और क्यों भटक रही है यों दर-दर। पर साहब, सब के देखते-देखते उस अकेली बहिन ने—मैं उसे 'बहिन' ही कहकर पुकारता हूं और साहब, सचमुच फ़ख़ होता है उसे अपनी बहिन कहते, उस बहिन ने कायापलट कर दी पूरी कॉलोनी की। कैसे ? अब मैं जरा खुलासा करके आपको समझाऊं। मान लीजिये, आप किसी आफिस में क्लर्क है, या छोटे-मोटे व्यापारी है, या मास्टर है और पूरी गृहस्थी है आपकी। अब इस मँहगी के ज़माने में आप अगर ऊपरी आमदनी नहीं कर सकते तो गई नैया रसातल में ! इसलिये आप निःसंकोच घूस लेते हैं, बेईमानी करते हैं—मुनाफ़ा करते हैं, ठगते हैं सारी पब्लिक को। यह एक नैतिक कार्य हो गया है आपके लिए, क्योंकि इसी के सहारे चल रहा है

सब और घरवाले जिन्दा है। पाप का तो कोई सवाल ही नही उठता। सवाल यही है कि आप अपनी बुद्धिमानी से औरों को कितना धोखा दे सकते हैं और कितना उनसे ऐंठ सकते है। जितना ज़्यादा पैसा खींच सकते है, उतने ही आप सफल व्यक्ति है। और यह बात आपकी औरत भी जानती है, बच्चे भी जानते हैं और पड़ोसी भी जानता है कि कैसे और कहाँ से इत्ता पैसा आता है कि आप के घर में सोफ़ा सेट भी है, रेडियो भी है, नौकर भी है और सारा घर जर्क-बर्क कपड़ों मे रहता है। लड़का कालेज जाता है, लड़की कालेज जाती है और सप्ताह में एकबार सपत्नीक आप सिनेमा भी देखते है और पखवारे में एकबार 'टी-पार्टी' भी हो जाती है दोस्तों की और तीज-त्योहार अलग। और इतनी-सी आपकी 'पे' है! पड़ोसी सब जानता है, पड़ोसिन भी जानती है। वे भी यही कर रहे है, उससे आगे के घरवाले भी और उससे आगे के भी—यह सारी कॉलोनी, दूसरी कॉलोनी, तीसरी—यहाँ तक कि सारा दिल्ली शहर और फिर सारा हिन्दुस्तान—सब जानते हैं इस रहस्य को। छोटा चोर, बड़ा चोर, और उससे बड़ा चोर—फिर डाकू, फिर और बड़ा डाकू!"

"चाय पी लो, ठंढी हुई जा रही है।"—इन्द्र ने बीच में टोंका, फिर कुरसी के पीछे स्तब्ध खड़ी पत्नी से बोला—"मालती बैठ जाओ तुम भी। बड़ी दिलचस्प बातें सुना रहे हैं तिवारी।"

तिवारी ने चाय के तीन-चार घूंट लिये फिर ताजा होकर कहने लगा—"अब साहब! एक दिन जब आप घर पर न थे, वह बहिन अचानक आ पहुँची और बहिन ने आपकी पत्नी को आ पकड़ा, आँखों में आँखे डालकर पूछा कि, क्या करते है तुम्हारे स्वामी, कितनी 'पे' है

और कितना खर्च है ? तो सब उगल दिया उसने, कुछ न छिपाया। बहिन उसे अकेले में क्या पट्टी पढ़ा गई, आप कुछ नही जानते और जनाब, उस दिन जो आप ऊपरी आमदनी लाये और नोट उसके आगे किये तो आपकी पत्नी ने क्या कहा आपसे, जानते है ? पत्नी कहेगी, 'यह आखिरी दिन है, अब कल से यह पाप की कमाई मेरे घर मे न आने पावे। देखो, तुम्हे मेरी क़सम है, अपने बच्चों की क़सम है, भगवान् की क़सम है—अब कभी ऐसा मत करना।' और पत्नी ने कह दिया कि 'तुम्हारी उसी ईमान की कमाई में सब काम चला लूंगी मैं, जो परेशानी आयेगी—झेल लूंगी। मेरे बच्चे भी कष्ट झेल लेंगे तो तुम क्यों नही मानोगे मेरी प्रार्थना ! मानोगे न ?' अब आप सोचते है, जिनके लिए अनैतिकता करता रहा, जिनके लिए बेईमान बना, रिश्वतखोर बना, जब वे ही नाक-भौंह सिकोड़ रहे है तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है ? लीजिये, ऊपरी आमदनी एक दम बन्द ! पत्नी की मेहनत-मशक्कत दुगुनी हो गई है, पर बहुत प्रसन्न है। बच्चे कहते है कि कपड़ों से काम चल जायेगा बाबूजी, किताबें अपने किसी साथी से माँगकर नक़ल कर लेंगे। अब तो आपका दिल भर-भर आता है। वह ग़लत पैसा लेते क्या कभी आत्मा को आनन्द होता था ? आनन्द तो अब होता है आत्मा को कि किसी को नहीं ठगते, तो आप भी अकेले में कहते है —यह सुख न छिने अब। वे सब कष्ट झेलने को तैयार हैं तो मैं भी कष्ट झेल लूँगा जो कुछ आयेगा ऊपर।—और साहब, इसके बाद एक दिन आपकी वह वीर औरत मेरी 'बहिन' के साथ पड़ोस के घर में पहुँची और उस पड़ोसिन से कहा—'तुम्हारी ये सन्तान तुम्हारे किये का फल भोगेगी, यह समझ लो ! ये बच्चे कभी अच्छे नागरिक न बनेंगे, यह लड़की कभी अच्छी माँ न

होंगी—इसकी सन्तान कभी उन्नति न कर सकेगी ! 'उस पड़ोसिन के होश उड गये सुनते-सुनते और उसने डरते-डरते पूछा, 'तो मैं क्या करूँ ?' इन्होंने कहा—'यह करो तुम और यह तुम्हे करना ही पड़ेगा, नहीं तो हम अनशन करेंगे तुम्हारे नाम पर।' वह भी फँसी। फिर तीसरी, फिर चौथी ! फिर इस छोटी-सी सैनिक टुकड़ी ने पूरी कॉलोनी की औरतों को, आदमियों से अलग-अकेले में, बटोर कर कहा—"तुम एक-एक नाशकारिणी हो, तुम्हीं सारे पापों की जड़ें हो, तुम्हीं अपने पतियों से अन्याय और अधर्म कराती हो अपनी चमड़ी को सजाने के लिए अपनी ज़ुबान के स्वाद के लिए, अपने ऐशो-आराम के लिए ! इस पाप का भागी कौन होगा—तुम्हारी औलाद ! समझ लो, भगवान् चाहे हो-चाहे न हो, प्रकृति किसी को माफी नहीं देती। तुम्हारे पूर्वजों ने जो ग़लती की उसका फल हम आज तक भोग रहे हैं, पर तुम्हारा यह पाप इतना बड़ा है कि कई सदियों तक औलाद 'कुकर्मी' होगी और तुम्हारा देश सारे संसार में 'नीचों का देश' कहलायेगा, सुनती हो ! यह इत्ता बड़ा देश बड़ी तेज़ी से रसातल की ओर जा रहा है—तुम्हारी जैसी औरतों के कारण। सारा अपराध तुम्हारा है, सारी ज़िम्मेदारी तुम्हारी है ! तुम चाहो तो हिन्दुस्तान को बचा सकती हो—नेहरू जी कुछ नहीं कर सकते। पाप की जड़ तो तुम हो—तुम्हीं ने यह 'विषवृक्ष' लगाया है—तुम्हीं इसे उखाड़ सकती हो। देखो, अपने पतियों की, अपनी औलाद की, अपने इस देश की तुम रक्षा कर लो, बड़ी सरलता से तुम यह काम कर लोगी। तुम माँ हो हिन्दुस्तान की—माँ हो तुम ! कोई ऐयाश औरत नही हो, तुम अपनी सती माँ की सती बेटी हो, तुम ! तुम उनकी औलाद हो, जिन का नाम लेते दुनिया का सिर झुकता है ! अरे, अपनी औक़ात

मत भूलो बेवकूफ़ो ! अपनी शान मत गँवाओ बहिनो ! अब बोलो, क्या कहती हो ? भगवान् की शपथ खाओ आज—अभी कि सारे कष्ट सह लूँगी पर अधर्म का—अन्याय का और बेईमानी का पैसा अपने घर में नहीं आने दूँगी !"—तिवारी कहते-कहते काँपने लगा, पर वह रुका नहीं, आगे बोला—"और भाई जी, फिर जो इन लोगों ने धावा बोला है तो सब ओर त्राहि-त्राहि मच गई ! एक विचित्र-सी ख़ुशी हुई सबको—एक अनोखा, अनजाना आनन्द पाया सब ने।"—तिवारी रुक गया इतना कहकर। मालती का चेहरा रक्ताभ हो उठा था। इन्द्र ने परिलक्षित करके हँसकर पूछा—"कहो, क्या हाल है !" तो मालती तनिक-सा मुसकरा कर अंचल से अपना मुख पोंछने लगी। गिरीश एक शब्द न बोला, जड़ होकर बैठा था वह। इन्द्र ने भारी प्रसन्नता से कहा—"तिवारी, आज तो तुमने कमाल कर दिया ! वाह, तबीयत खुश हो गई ! फिर ? आगे सुनाओ कुछ।"

तिवारी ने श्रद्धातिरेक से कहा—"अरे सारी रात यहीं, इसी तरह बैठे बीत जायेगी मुझे, अपनी उस बहिन की बातें सुनाते ! मेरा तो रोम-रोम पुलकित हो जाता है इस कथा को कहते। अच्छा जी, अब एक मज़ेदार घटना सुनाऊं आपको अपने मुहल्ले की। एक साहब की कन्या की शादी ठहर गई थी और घरवाली हो गई मुंडित ! अब वैसे क्या हो ? बिना पैसे के कहीं शादी होती है ? और पैसा इकट्ठा होता है बेईमानी से—ज़ुल्म से, सो उसके लिए तो शपथ खा ली है भगवान् की। तब फिर ? उसने डरते-डरते 'बहिन' से कहा तो बहिन हंस कर बोली—'तू क्यों चिन्ता करती है ? सब ठीक हो जायेगा। अकेले तुझी पर सब जिम्मेदारी है क्या ? अरी, ये

सब तेरी बहिनें—तेरी माताएं–ताइयाँ, ये करेंगी इन्तजाम।' और साहब सचमुच सब हो गया आनन-फ़ानन। सारे जवान लड़के जुट पड़े, सारी औरतें लग गईं। मानों इन्हीं की बहिन का ब्याह हो, मानो इन्हीं की बेटी की शादी हो। बरतन और साड़ियाँ और ब्लाउज और यह और वह—घर में ढेर लग गये सामान के। खैर, यहाँ तक तो मजे में चला। अब सबसे बड़ी बला आई दहेज़ की। एक लम्बी लिस्ट लड़के वालों ने भेज रक्खी थी कि इतना ज़ेवर, इतनी नक़दी और इतना फ़र्नीचर और इतना यह लड़के को। लेकिन बहिन ने कहा कि कुछ आफ़त नहीं है और चार-पाँच तेज़ औरतों को साथ लेकर जा पहुँची लड़के वालों के यहाँ और भगवान् जाने क्या जादू किया कि लड़के की माँ, बुआ, भाभी और बहिन सब की सिट्टी-पिट्टी भूल गई—रंग ही बदल गया सबका। अब बारात बिदा होने लगी तो लड़की वाले कहते है—हम यह—इतना देंगे और लड़के वाले कहते है—हम कुछ लेकर ही नहीं जायेंगे! लड़की वाले कहते हैं—हमारी नाक कट जायेगी तो लड़के वाले कहते हैं कि—नाक तो हमारी कट जायेगी! और जनाब, इतने स्नेह और प्यार की बातें हुई दोनों ओर से कि मज़ा आ गया देख कर। सब उसी मेरी 'बहिन' की कृति थी यह! मैं आपसे क्या अर्ज़ करू भाई जी, वह नारी—वह मेरी बहिन, क्या है— धधकती आग का गोला है कि चाँद की शीतल चाँदनी है कुछ कह नहीं सकता! छोटा सा नाम है उसका—गंगा। पर वह ठीक गंगा की तरह ही पावन है—सबको तारने वाली। यों देखने में भोली-भाली सौम्य लड़की लगती है। पर क्या आप एक ऐसी नारी की कल्पना कर सकते हैं, जिसका सम्पूर्ण जीवन दूसरों की सेवा में बीता हो और जिसने उस 'सेवा' के बदले किसी से कुछ

न मांगा हो ? जो नख से शिख तक पावन हो, जिसके शरीर का रक्त-मांस तक समाज के लिए हो और जिसे किसी से भी घृणा न हो, जो प्रेम की—स्नेह की साकार प्रतिमा हो—ऐसी एक विभूति की कल्पना कीजिए जरा। और आप बात करेंगे उससे तो कहेंगे कि कितना अपार ज्ञान है उसे। मुझसे एक दिन बहुत देर तक बातें करती रही तो अपनी पिछली कहानी सुनाते-सुनाते कहा —'दो साल तक शरणार्थियों के बीच रही—उनका दुख बंटाती रही। कितना कष्ट लगता था रोज़ उनकी बातें सुनकर! कितनी भारी मूर्खता हुई यह ! इस राजनीति के पीछे भी अर्थनीति है और धर्म की, संस्कृति की वीभत्स काया है। ये लोग नहीं जानते कि यह कंकाल—यह संस्कृति का ढाँचा एक दिन यों ही गिर पड़ेगा—यह सब सड़ गया है। यह धर्म, यह वर्णवाद, यह जातिवाद अब कितने दिन चल सकेंगे ! ये सब तो आखिरी सांसें गिन रहे हैं। इनके विरुद्ध कोई कुछ न कहे—कुछ न करे तो भी ये मर जायेंगे और एक नयी सस्कृति, नया धर्म बनेगा, जो बहुत महान् होगा, जिसे सारी दुनिया स्वीकार करेगी। यह नयी संस्कृति हम अपनी पुरानी संस्कृति के आधार पर ही खड़ी करेंगे—यह सत्य है। भारत ही सारे संसार को प्रकाश दिखायेगा, यह भी मेरा विश्वास है। पर जो अतीत मे था, उसे हम आगे भी ज्यों का त्यों रख सकेंगे—यह कोरी भावुकता है, निरा पागलपन है।' फिर उसने मुझसे बहुत भोलेपन से पूछा—'भैया, यह जो मैंने एक छोटी-सी योजना बनाई है, यह आप को पसन्द है न ? मैंने दिल्ली को पन्द्रह हिस्सों में बांटा है और तीन मे हमारी यह छोटी-सी योजना चालू हो गई है और चौथी जगह यह आपकी कालोनी है। इसी तरह हम सारी दिल्ली को ऊँचा उठा देंगे। बहुत बड़े

ऊँचे तबके के लोगों के पास मैं कभी नहीं गई। वे लोग 'समाज' थोड़े ही है—समाज तो हम-तुम है। पन्द्रह आना का नाम ही रुपया है, एक आना क्या है? और न उस एक आना को अकेले में कोई शान ही है। अकेले में वह एक आना मान ले अपने को बहुत बड़ा—हम तो उधर झाँकेंगे भी नही, तो उसका वह बड़प्पन देखेगा ही कौन? हम मध्य-वित्त प्राणी खुद उठेंगे और पड़ोसी को उठायेंगे ऊपर। एक दिन दिल्ली हमारी स्वच्छ हो जायेगी। फिर दूसरा शहर—फिर तीसरा, फिर पूरा देश ऊंचा हो जायेगा एक दिन! उस दिन चाहे मै न रहूँ, पर ये मेरी माताएं, ये मेरी बहिनें, मेरी ये बेटियाँ, ये सब रहेंगी और इस छोटी-सी ज्योति को यों ही जलाती रहेगी। भैया, मेरा विश्वास है, हिन्दुस्तान अपनी नारियों के कारण ही महान् रहा, नारियों की बदौलत ही गिरा और नारियों के द्वारा ही फिर ऊपर उठेगा। दुनिया की और कोई ताक़त देश को इस नैतिक पतन से बचा नहीं सकती। मैं ग़लत कह रही हूँ भैया?'

"मैं तो विमुग्ध हो गया उसकी वाणी सुनकर। एक बार तीव्र इच्छा हुई, इसकी—अपनी बहिन की चरण-रज माथे से लगा लूँ और कहूँ—'गंगा, मेरी प्यारी बहिन, तू महान् है और तेरी जैसी नारियों से ही यह भारत भूमि महान् है और हम सब भी महान् है तेरे कारण, तेरे अधम भाई।"

मालती ने हौले से पूछा—"उन बहिन जी की अपनी घर-गिरस्ती है?" "नहीं। उसका अपना-सगा कोई नहीं।"—तिवारी ने धीमे स्वर में कहा—"सुना था कि वह 'विधवा' है। पर आज उसका इतना बड़ा परिवार है इस दिल्ली में कि उसके लिये हज़ार जानें निसार हो जायेंगी।

यों उसे कौन जानता है ! कभी उसका फ़ोटो न छपा, कभी समाचार-पत्रों में उसकी योजनाएँ न आई, कभी-कही, किसी सभा में उसका अभिनन्दन न हुआ। पर जिन घरों को—जिन परिवारों को उसने पवित्र किया है—दिल्ली का एक किनारा, हम मध्यम श्रेणी के लोगों का एक बड़ा भारी समूह उसके नाम पर सिर झुका देता है श्रद्धा से। वह कहे तो, हमारा बच्चा-बच्चा कट मरेगा, विश्वास करो भाभी, वह क्या कोई साधारण जीव है ! वह तो एक 'ज्योति-पुंज' है, एक प्रकाश है—शीतल प्रकाश !"

"तो तुम्हारी श्रीमती जी भी उन बहिन जी के चक्कर में आ गईं मालूम होती है ?"—इन्द्र ने इतनी देर बाद हँस कर कहा।

"हाँ भाई, शुरूआत वहीं से हुई थी और अब तुम समझ गये होगे कि इस साल मैंने कोर्स-कमेटी मे पुराना फ़ारमूला क्यों नही चलाया।"

मालती ने बात काट कर कहा—"भाई जी, बहिन जी के दर्शन मुझे करा सकेंगे किसी दिन ?"

"अँय ! तुम पर तो सुनते-सुनते ही रंग चढ़ गया ! शाबाश !" पर मालती ने पति की बात पर ध्यान न दिया और तिवारी से फिर पूछा अनुनय के स्वर मे—"उन से मेरी भेंट नहीं हो सकती भाई जी ?"

"क्यों नही हो सकती ? ज़रूर हो सकती है। पर भाभी, अगर एक बार भी वह इधर आ गई तो फिर तुम्हारा मुहल्ला भी उसकी लपेट मे आये बिना न रहेगा। यो देर-अबेर तो इधर का प्रोगाम उसका बनता ही कभी न कभी। उसने तो सारी दिल्ली को स्वच्छ करने की प्रतिज्ञा की है और उसकी यह प्रतिज्ञा एक दिन ज़रूर पूरी होकर रहेगी—मेरी अन्तरात्मा कह रही है। तो बोलो भाभी, कब ले आऊँ उसे ? कल ?"

मालती ने पुलकित होकर कहा—"हाँ, कल ही ले आइये उन्हें, मैं आपकी चिरकृतज्ञ रहूँगी।"

"आल राइट् ! अच्छा तो चलू भाई इन्द्र, अच्छा भाभी जी, आज्ञा दीजिये अब। मैं कल शाम को—"

इतने में फाटक-से कोई बाहर वाला दरवाजा खोलकर भीतर घुस आया। कौन है ? सबने चौक कर इधर देखा। सत्यनारायण था। कुर्सी पर जमकर अपने ही आप बोला—"उस दूकान से उमाकान्त का कुछ पता न लग सका।"

तिवारी अभी तक खड़ा था। पूछने लगा—"कौन उमाकान्त ?"

"हैं एक महान् सज्जन।"

"एक उमाकान्त जी तो मेरे पड़ोस में रहते है।"—तिवारी ने बतलाया।

"कुछ लक्षण बतलाओ उनके तो कुछ अन्दाज़ भी लगे। उमाकान्त नाम वाले तो जाने कितने होंगे दिल्ली में।"

तिवारी ने कहा—"कद कोई छः फुट। रंग गोरा। शरीर तगड़ा—स्मार्ट ! माथे पर बाँयीं भौंह के ऊपर तक एक निशान है लम्बा-सा।"

"आपको ठीक-ठीक याद है ? अगर बाँयीं ओर निशान है माथे पर तो निश्चयपूर्वक वही है।"

"लीजिए ! रोज़ ही तो उसे देखता हूँ।"

"पत्नी भी है उसकी ?" इस बार इन्द्र ने पूछा।

"हाँ, पत्नी है। पत्नी उसकी काफ़ी सुन्दर है और भली औरत है। सारा पास-पड़ोस उसकी तारीफ़ करता है।"

"नाम क्या है पत्नी का ? महादेवी ?"

"उसकी औरत का नाम तो मैं नही जानता भाई, पर आदमी वह बड़ा मुतफ़न्नी है, इतना ज़रूर जानता हूँ। बहुत ऊपर तक पहुँच है उसकी। पैंतालीस हज़ार की किताबों का सरकारी टेंडर है अकेले उसके हाथों में। मुझसे भी पाँच-छः सौ की किताबें खरीद चुका है और वह सब दूकानदारों से धड़ाधड़ अपने मतलब की किताबें खरीद रहा है आजकल। मेरे ख़्याल से तो तुम्हारे पास भी पहुँचेगा वह किसी रोज़।"—तिवारी ने इन्द्र से कहा और फिर चल दिया धीरे से तो मालती उसके पीछे-पीछे दौड़ी आई दरवाज़े तक और एक बार फिर उसने पूछा—"कल बहिन जी को लायेंगे न ?"

"ज़रूर-ज़रूर ! शाम को पाँच बजे कल। नाश्ता तैयार रखियेगा भाभी, मेरे लिये !"

... ...

वही हुआ जो तिवारी कह गया था। दूसरे ही दिन, सचमुच जब उमाकान्त इन्द्र के आगे आ खड़ा हुआ तो वह हाथ का काम रोक कर उसे देखता रह गया भौचक्का होकर।

उमाकान्त ने सामने कुर्सी पर बैठ कर कहा बड़ी शाइस्तगी से—"मैं आपके प्रकाशन की लिस्ट देखना चाहता हूँ। कुछ किताबें खरीदनी हैं।"

इन्द्र ने बिना कुछ बोले लिस्ट उसके आगे पेश करदी और एक विरक्ति भर भाव से उमाकान्त को ताकता रहा। उमाकान्त सिर डाले पढ़ता रहा—पढ़ता रहा, फिर उस लिस्ट को धीरे से टेबिल पर रख कर बोला—"यह तो आपका प्रकाशन है। और भी तो बाहर की पुस्तकें होंगी आपके पास ?"

इन्द्र ने तटस्थ भाव से कहा—"जी नहीं और पुस्तकें नहीं हैं। आप किस तरह की पुस्तकें खरीदना चाहते है ?"

उमाकान्त इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सका तो इन्द्र ने ही कहा—"देखिए, आपके काम की पुस्तकें शायद मेरे पास नही मिलेंगी। मैं तो केवल क्लासिक्स ही निकाल रहा हूं या फिर वे पुस्तकें जो अब दुष्प्राप्य हो गई है और जिनके शुद्ध संस्करण नहीं मिलते। बहुत परिश्रम करके इन पुस्तकों का सम्पादन अच्छे विद्वानों से करा रहा हूँ और एक-एक पाठ निश्चित करने के लिए खुद भी माथापच्ची करता हूँ। नमूने के लिए यह 'पद्मावत' है"—उसने हाथ का प्रूफ आगे करके कहा—"इसमें लगे-लगे मुझे ढाई साल हो गया, तब जाकर यह पुस्तक छप रही है अब और इसमें आप एक लाइन भी अप्रमाणित नहीं पायेंगे। समझ गए न ?"

उमाकान्त ने शिथिल स्वर में कहा—"समझ गया। पर आपने यह कैसे मान लिया कि ये पुस्तकें मेरे काम की नहीं है ? मैं तो आपकी प्रकाशन सूची देख कर ही सन्तुष्ट हो गया हूं। यह पूरा प्रकाशन ही खरीदना है मुझे। कमीशन किस हिसाब से दीजिएगा ?"

इन्द्र ने बतलाया कि वह अपने प्रकाशक साथियों को और स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं को कितना कमीशन देता है और फिर उसने पूछा—

"आपतो शायद प्रकाशक भी नहीं है—पुस्तक–विक्रेता भी नहीं है। बोलिए आपको किस कोटि में रक्खूं मैं ? आप तो चालबाज़ी से मिला सरकारी टेंडर भर रहे है शायद।"

"आप कैसे जानते हैं?"

"मैं जानता हूं। आपका नाम उमाकान्त है न ?"

"आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"हो गया मालूम। आप गिरीश दादा को जानते हैं ?"

उमाकान्त के चेहरे का रंग उड़ गया क्षण भर में ही, जैसे और सिर झुका गया वह। इन्द्र उसके चेहरे पर नज़र जमाये रहा और उसके मन मे फिर विरक्ति उपजी और उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।

अन्त मे उमाकान्त ने सिर डाले ही कहा—"उन्हे क्यो न जानूँगा मैं। वे मेरे गुरु थे—मेरे मार्ग-प्रदर्शक थे। उन्हीं के लिए तो यह श्रम कर रहा हूँ"

"उनके लिए श्रम कर रहे है ? क्या मतलब ?"

उमाकान्त ने साँस खींच कर कहा—"मेरा विश्वास है, आपका 'दल' के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रहा है, आप सब जानते ही होंगे। मैंने जो जघन्य अपराध किया है, उसका प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। गिरीश दादा अब इस संसार में नहीं है, नहीं तो मैं उन्हीं के चरणों में सिर पटक कर अपने उद्धार की राह पूछता और वे मुझे अवश्य क्षमा का दान देते और पापों का परिमार्जन भी करवाते मुझसे। पर अब भला उन्हे कहाँ पाऊँगा मैं! इसलिए यह एक अर्थहीन-सी योजना बनाई है मैंने और मेरी पत्नी ने। मेरी पत्नी को गिरीश दादा पर अपार श्रद्धा है—वह उन्हे 'देवता' मानती है। हम दोनों ने सोचा कि दादा की जन्मभूमि पर उनका एक विशाल स्मारक बने—एक गगनचुम्बी स्मारक और वहीं एक 'नारी–निकेतन' की स्थापना हो। दादा ने कितनी ही बार अपने मुख से यह कहा था कि कितने दुख की बात है कि लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा की ओर कोई ध्यान नही दे रहा है। हिन्दुस्तान आधा तो गर्क हो

गया, अब अगर ये लड़कियाँ भी—ये नारियाँ भी हम पथभ्रष्ट पुरुषों के पीछे-पीछे चली आईं तो पूरा देश ही समझो समाप्त हो जायेगा और फिर कोई न रोक सकेगा ढाल पर से तेजी से नीचे को सरकते हिन्दुस्तान को। हम दोनों ने सोचा है कि—'नारी-निकेतन' बने दादा की उस गौरवमयी जन्मभूमि पर और वह भी इतना विशाल हो—इतने बड़े पैमाने पर वहाँ हर प्रकार की शिक्षा-दीक्षा हो कि शहर छोड़कर लड़कियों को वहाँ आना पड़े और वे भारतीय पत्नी, भारतीय माँ बन सकें। दादा की आत्मा को इससे ज़रूर शान्ति मिलेगी और मेरे पाप का बोझ भी हल्का होगा कुछ। पर बहुत रुपया चाहिए इसके लिए। मैं किसी तरह प्रयत्न करके ऊपर के लोगों तक पहुँचा। उनसे अनुनय-विनय की। पर किसी ने ध्यान से न सुना मेरा 'नारी निकेतन' वाला निवेदन और स्मारक का तो नाम सुन कर ही चौंक पड़े सब कि एक हिंसावादी का स्मारक हमारी सरकार कैसे बनवा सकती है? हम अहिंसा के पुजारी है। तब हार कर मैंने यह उपाय निकाला। तरह-तरह के सरकारी ठेके लेने शुरू कर दिये। पैसा तो सरकारी ही है, सरकार से ही ले रहा हूँ केवल प्रकार बदल गया है।"

इन्द्र घड़ी भर स्तब्ध रहा। वह न तो इस प्रस्ताव के विरुद्ध ही कुछ कह पाया और न इसका अनुमोदन ही कर सका। यह घृणित व्यक्ति और इसके साथ वह अति साधारण स्तर पर उतरी एक राह से भटकी नारी-महादेवी, इन दोनों के प्रति इन्द्र अपने मन में किसी भी प्रकार सहानुभूति न उपजा सका। उसने कुछ कहा ही नहीं।

उमाकान्त ही आगे बोला—"आप सब जानते हैं। आप मुझसे मन ही मन घृणा भी करते होंगे, इसीलिये कुछ बोल नहीं रहे है। कीजिए घृणा, लेकिन किताबे तो मुझे दीजियेगा न, एक साधारण ग्राहक समझ कर ? या चरित्रभ्रष्ट लोगो के हाथ किताबें बेंचना भी आप गुनाह समझते है ?'

इन्द्र ने बलपूर्वक कहा ज़रा-सा हँस कर— "ऐसी बात नहीं है। आपकी जब इच्छा हो, किताबें ले जाइये। कमीशन भी आपको उतना ही दूंगा, जितना अन्य प्रकाशकों को देता हूँ।"

"तो इसके लिए मैं कब आऊं ? किताबें तो मुझे अभी बहुत चाहिएं। सप्लाई कर सकेंगे न ? स्टाक कहाँ रखते हैं आप ?"

इन्द्र ने सोचकर कहा—"कल आइये—कल शाम को और मेरे घर पर आइये, स्टाक वहीं है, यह मेरे घर का पता है।"

···पता नोट करके उमाकान्त चला गया तो यकायक इन्द्र को याद आया कि अरे, यह उसने क्या ग़लती कर दी ! अब यह अस्पृहणीय व्यक्ति कल मेरे घर पहुँचेगा और घर पर दादा है मेरे और वे इसे देखेंगे, तो क्या होगा ? और यह उन्हें देखेगा, तो क्या होगा ? क्या होगा फिर ?

और रात को जब वह दादा के साथ भोजन करने बैठा तो अनायास ही कह उठा—"आज उमाकान्त आया था मेरे पास, किताबें खरीदने।"

"अच्छा !" गिरीश ने अति साधारण स्वर मे कहा, तो इन्द्र ने आश्वस्त होकर सुनाया—"और कल शाम को यहीं आयेगा।"

गिरीश ने उसी स्वर मे पूछा—"क्या तुमने उससे कह दिया है कि मैं यहाँ हूँ ?"

"नहीं, यह तो मैंने नहीं कहा। आपकी चर्चा उठी थी। उसे तो यही मालूम है कि आप—"

"मर गये है।" गिरीश ने वाक्य पूरा करके हँसते-हँसते कहा—"यह अच्छा तमाशा है! लोग समझते है कि मैं चिता पर रखकर भस्म कर दिया गया और मैं पूरा पंच भौतिक शरीर लिये बैठा हूँ यहाँ!"

पर इन्द्र ने दूसरी बात कही। उसने बताया—"महादेवी उसी के साथ है। 'मेरी पत्नी' कहकर परिचय दे रहा था उसका।"

"तो और क्या कहे उसे? पत्नी को तो पत्नी ही कहा जाता है।"

तब एक बार इन्द्र को इच्छा हुई कि वह उमाकान्त और उसकी पत्नी महादेवी की कल्पित योजना की बात दादा को सुनाये, पर वह कुछ कह न सका, उसे उत्साह ही न हुआ सुनाने का।

... ...

मालती सुबह से ही घर को सम्हालने-पुचारने मे लग गई वरिवार था और बच्चों को आज स्कूल जाना न था। इन्द्र नाश्ता करके सुबह-सुबह ही निकल गया था। ग्यारह बजे घर लौटा तो भीतर आते ही बोला—"खाना परोसो!"

मालती ने अनुनय करके कहा—"जरा रुक जाओ। खिचड़ी चढ़ा दी है मैंने। अभी तैयार हुई जाती है।"

मालती ने अनुनय करके कहा—"जरा रुक जाओ। खिचड़ी चढ़ा दी

दादा भी खा लेंगे खिचड़ी, मैंने पूछ लिया है। देखो, नाराज़ मत होना। मुझे फ़ुरसत ही कहाँ मिली, दाल-शाक बनाने की!"

"क्यों, फ़ुरसत क्यों न मिली श्रीमान्‌जी?'

"देखो, इस तरह व्यंग्य-वचन मत बोलो। बहिन जी आज आ रही हैं शाम को। सारा सामान उल्टा-सीधा पड़ा था। सब झाड़ती-बुहारती रही फिर सारा घर धोया पानी से।"

"ओह, यह बात है! पर मालती, मुझे 'शो' से सख्त नफरत है। आदमी जो कुछ जैसा है, वैसा ही अगर दूसरे के आगे प्रकट हो तो क्या बुराई है इसमें ?"

"शो नहीं है यह, सच कहती हूँ। मेरे मन की श्रद्धा है बहिन जी के प्रति और किसी पूजनीय व्यक्ति पर श्रद्धा करना कोई अपराध नहीं है।"

इन्द्र ने इसपर कुछ नहीं कहा। वह बैठक वाले कमरे में दादा के पास आ बैठा।

आज सबेरे से गिरीश बैठा-बैठा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की विस्तृत भूमिका पढ रहा था। वह इन्द्र ने ही लिखी थी और यह सिद्ध किया था कि प्राचीन-यूनानी नाटकों पर भारतीय नाट्यशास्त्र का स्पष्ट ही प्रभाव पडा है।

गिरीश ने उसे पास बैठा देखकर किताब बन्द कर दी और हँसकर कहा—"यह तुमने क्या किया है! सिद्ध कर दिया है कि कला के क्षेत्र में, जो कुछ भी कहीं है, सब भारत की देन है। यह तो दुराग्रह लगता है मुझे।"

इन्द्र ने उत्तर दिया—"मैंने प्रमाण भी दिये हैं।"

"यह भी दुराग्रह है।"

"दादा, सत्य क्या है, सो तो शायद कोई नहीं जानता। पर हम हर चीज में योरोप का ही अन्धानुकरण क्यों करें ? किसी विदेशी विद्वान की लिखी बात को, चाहे वह उसकी निरी कपोल-कल्पना ही क्यों न हो, हम

आँख मूँद कर सत्य मान लें—यह भी तो भारी मूर्खता है। क्या यह सच है कि हम ने यूनान से नाट्य-कला सीखी ?"

गिरीश ने हँसकर कहा—"देखो भाई, किसने, किससे, क्या सीखा—इसका कुछ महत्व नहीं है। महत्व की बात यही है कि पूरे मानव-समाज ने किस तरह मिल-जुलकर एक दूसरे के सहारे उन्नति की, आदमी कैसे नीचे से ऊपर उठता गया और कैसे वह अपने मार्ग पर आगे बढा और उसके कदम कहाँ ग़लत पड़े। इतिहास का अर्थ यही होता है और इसी दृष्टिकोण से हर चीज़ का इतिहास लिखा जाना चाहिये। भला यह सिद्ध करने से क्या लाभ होगा कि अतीत में भारत ही सर्वोपरि था ! यह क्या कभी सम्भव हो सकता है ? हमने जाने कितना दूसरों से सीखा और जाने कितना दूसरों ने हमसे सीखा। यह विनिमय—यह 'एक्सचेंज' ही तो जीवन है। यह एक्सचेज जिस दिन रुका, लगेगा मानव-समाज की मौत हो गई। तुम जानते हो, हमारे 'नेशन' के अधःपतन का बहुत बड़ा कारण यही है।"

मालती ने सामने आकर बात काट दी, बोली—"उठिये, आप लोग। मैंने खिचड़ी परोस दी है।"

खिचड़ी खाकर इन्द्र सो गया तो सोता ही रह गया। उठा तो धूप उतर गई थी और स्वच्छ आँगन के बीच बैठी मालती दोनों बच्चों को समझा रही थी—"वे जो आज आ रही हैं तुम्हारे घर, देवी हैं बहुत बड़ी।"

छोटे लड़के ने कुतूहल से पूछा—"कितनी बड़ी है माँ ? उस छत तक ?'

"हिश ! देखो, वे तुम्हारे घर आवें तो प्रणाम करना उन्हें। अच्छा, कैसे प्रणाम करोगे ? बतलाओ तो !"

"यो करेंगे।" बड़े लड़के ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा।

"नहीं, यो नहीं, पैरों से सिर लगाकर। उनके चरणों से सिर लगाना अपना। तुम्हे वे आशीर्वाद देंगी। बहुत बड़े आदमी बनोगे फिर।" इसी बीच सामने मुसकराते खड़े इन्द्र पर उसकी नज़र गई तो थोड़ा झेंपकर बोली—"आप भी कपड़े बदल लीजिये न!"

"फिर वही शो!"

"तो मत बदलिये यह गन्दी-मैली धोती और बनियाइन बल्कि इस पर थोड़ी-सी कीचड़ और थोप लीजिये।"—मालती ने दुखी होकर कहा।

पर इन्द्र हँसता ही रहा और हँसते-हँसते ही उसने पूछा—"कुछ नाश्ते का इन्तजाम कर लिया कि नहीं? तिवारी भी तो आ रहा होगा, वह पूरा पेटू है, आते ही माँगेगा।"

मालती ने चौंक कर कहा अपराधिनी की तरह—"अरे, मैं तो भूल ही गई थी। आपने अच्छी याद दिला दी, क्या बना लूँ, बताइये!"

छोटा लड़का उछल कर बोला—"खीर! खीर बना लो माँ!" उसे खीर बहुत भाती थी। बड़े ने कहा—"नहीं माँ, हलवा बना लो किशमिश डाल कर।"

इन्द्र ने पूछा शाइस्तगी से—"दोपहर की खिचड़ी बची है कुछ?"

"हाँ, रक्खी तो है कटोरा भर खिचड़ी।"

"तो बस, वही पेश कर देना।"

"चलिये, हटिये, क्या सुन्दर सम्मति दे रहे हैं! मैं पकौड़ी तले लेती हूँ और थोड़ी-सी मठरी और आलू के पापड़। ठीक रहेगा न?"

"कितना घी लगेगा इस नाश्ते मे?"

"छिः, कैसी ओछी बातें करने लगते है आप कभी-कभी ! अच्छा, क्या उन बहिन जी के प्रति आपके हृदय मे कुछ भी आदर भाव नहीं है ?"

"देखो मालती, आदर-श्रद्धा-भक्ति —यह सब मुँह से कह कर नही बतलाया जाता । अब अगर मैं तुमसे कहूँ—मालती प्रिये, मैं तुम्हे दिलोजान से प्यार करता हूँ—मरता हूँ तुम्हारे ऊपर—"

मालती फ़ौरन उठकर भीतर भाग गई । इन्द्र हा-हा हँस पड़ा और दोनो बच्चे कुछ समझ न पाकर, कभी भीतर छिपी खड़ी माँ को और कभी बाहर हँसते खड़े बाप को बारी-बारी ताकते रहे सरल दृष्टि से

...इसके बाद, ज्यों-ज्यों शाम नज़दीक आती गई, मालती उत्कंठित होती गई कि अब बहिन जी आ रही होंगी ।

सदा का गम्भीर गिरीश और उसी का अनुकरण करनेवाला इन्द्र—दोनों यद्यपि चुप थे, फिर भी उत्सुकता उन्हे भी थी उस कर्मठ और तेजस्विनी नारी को देखने की । कमरे में जरा जरा झुटपुटा हो आया था ।

सहसा दरवाज़े पर किसी ताँगे के रुकने की आवाज हुई तो मालती ने चौक कर कहा—"आ गईं !" और वह बाहर की ओर भागी गई ।

इन्द्र उठकर खड़ा हो गया और पलंग पर आधा लेटा गिरीश भी सीधा होकर बैठ गया । परन्तु दो मिनट पीछे जो मालती के साथ भीतर घुसा वह वह गंगा बहिन न थी, सत्यनारायण था ।

कोने में अपना छोटा-सा बक्स और विस्तर पटक कर वह इन्द्र से बोला—"घबराना मत, ज़्यादा अन्न बरबाद नहीं करूँगा तुम्हारा । कल ही कूच है मेरा । दादा के पास एक रात और रह लेने दो मुझे । बैठो भाई—

असल में बात यह हुई जिस भलेमानस के यहां ठहरा था, उसको आज जेल हो गई।"

"जेल हो गई ? क्यों ?"

सत्यनारायण कुछ कहना ही चाहता था कि उसी क्षण पीछे से एक आवाज सुन पड़ी—"भाभी !"

और सब ने एक साथ चौंककर उधर देखा तो दूर दरवाजे के बीच तिवारी खड़ा था किसी नारी को साथ लिये। उस अस्पष्ट-सी नारी-मूर्त्ति को देखकर मालती के कलेजे में धक् से हुआ और इन्द्र भी जैसे घबराकर फिर खड़ा हो गया और गिरीश भी उधर देखता रहा अपलक। काँपता हृदय लिये मालती आगे बढ़ी, तब तक तिवारी दो क़दम रखकर यहाँ पलंग के पास आ गया और टेढ़ी-तिरछी पड़ी कुर्सी को सीधा करके अपनी साथिनी से बोला—"बैठो बहिन !"

किसी ने किसी को नमस्कार न किया। कोई कुछ बोल ही नहीं पाया। मालती घबरायी-सी खड़ी थी और उस हलके अँधेरे में किसी को भी किसी की शकल स्पष्ट नहीं दीख रही थी और सबने जैसे एक घुटन-सी महसूस की। इस स्थिति को बस क्षण भर लगा और क्षण भर ही रुककर तिवारी बोल उठा—"रोशनी करो भाभी !"

मालती ने कांपते हाथों से कोने का स्विच दबा दिया और पलक मारते कमरा आलोकित हो उठा।

गिरीश पलंग के सिरहाने बैठा था और उसके पांयते था सत्यनारायण। इन्द्र इस किनारे से खड़ा था और इन्द्र के पीछे आधी छिपी मालती थी और पलंग से गज भर की दूरी पर—गिरीश के ठीक सामने वह कुरसी

थी, जिस पर तिवारी की साथिनी बैठी—वह बहिन जी और तिवारी बग़ल मे था उसकी।

कमरे मे आलोक हो गया तो सब एक दूसरे को देख पाये और सब ने जैसे स्वस्ति की साँस ली। मालती और इन्द्र और सत्यनारायण—तीनों की नज़रें एक साथ उस दर्शनीय नारी पर गईं और उस सौम्य स्वरूपिणी नारी की दृष्टि ठीक सामने बैठे गिरीश पर गई। गिरीश ने भी उसे निहारा और यों आँखों में आखें आ गिरीं!

मुश्किल से एक पल बीता होगा तिवारी परिचय के लिए कहने को हुआ कि आप इन्द्र के भाई हैं, कठिनता से एक पल बीता कि वह तेजस्विनी नारी बेसुध होकर कुरसी से नीचे लुढ़क गई।

"क्या हुआ? क्या हुआ?"

"क्या हो गया इन्हे?"

बिजली की गति से गिरीश कूदा और पलक झपते उसने वह बेसुध कोमल काया बाँहों में उठा ली और उसे पलंग पर लिटा दिया धीरे से और बिना किसी की ओर देखे पुकारा—"पानी, लाओ जल्दी!"

"पखा खोलो, पंखा!"

और ठीक इसी समय उमाकान्त घुसा उस कमरे मैं, जब ये सब घबराये हुए थे और मालती दौड़कर पानी ले आई थी लोटे में और इन्द्र बार-बार छींटे दे रहा था उस समय मुंदे, मुरझाये कमल से, मुख पर और थर-थर काँपती मालती शीतल हुए हाथ को अपने हाथों मे दवाये बैठी थी और सिरहाने खड़ा गिरीशसुन्न-सा होकर निहारे जा रहा था उस पानी भीगे शुभ्र

को और सत्यनारायण किंकर्त्तव्य विमूढ़ था और तिवारी कातर होकर पुकार रहा था—

"बहिन, आँखें खोलो बहिन !"

उमाकान्त की ओर किसी ने ध्यान न दिया और वह जाने कब पॉयते जा बैठा और जल्दी-जल्दी उन सुकुमार चरणों को मलने लगा अपनी हथेलियों से, सुन्दर चरण जो ठंडे हो गये थे बिलकुल। फिर वह अचानक ही ऊपर को सरका और उस प्रसुप्त मुख पर झुककर पुकार उठा—"दीदी !"

"दीदी !" जैसे बिजली का झटका लगा हो सबके मनमें।

"अरे, वह तो महादेवी है !"

"अरे, यह गंगा बहिन नहीं है !"

"अरे, यह उमाकान्त की पत्नी भी नहीं है, उसने अभी 'दीदी' कहकर पुकारा है !"

और एक अनिर्वचनीय श्रद्धातिरेक से—एक मधुर सुखानुभूति से सबके हृदय भर उठे, जैसे किसी दुःस्वप्न से अचनाक ही आंख खुल गई हो।

"ओह क्या सोच लिया था हमने !"

"अहा, वह महिमामयी नारी तो हमारी महादेवी ही है !"

"यह तो दीदी है !"—संवरण न कर पाकर सत्यनारायण फुसफुसाया।

"हाँ दीदी है !"—भरे गले से इन्द्र बोला।

"हाय, इसे होश क्यों नही आ रहा है ?"

"महादेवी !"—गिरीश ने हौले से पुकारा।

यह कैसी पुकार है ? चिरविरहिणी राधा की संजीवनी, सदियों से यह कन्हैया की वंशी-ध्वनि है क्या ?

कितने असंख्य दिनों के बाद, बेशुमार रातों के बाद—कितने सालों के बाद आज यह पुकार आई है ! इस नींद से जागो महादेवी, जागो !

... ...

महादेवी की चेतना लौट आई। महादेवी ने धीरे-धीरे पलक उघारे, मानो किसी छोटे से नील कमल की पँखुड़ियाँ खिल रही हों धीरे-धीरे।

और तब एक अप्रत्याशित बात हुई। उमाकान्त ने चकित होकर गिरीश को देखा पहिली बार और तब वह सुध-बुध बिसार कर महादेवी को भूल कर पलंग से कूदा और गिरीश से लिपट गया जाकर वह अभागा—वह कुकर्मी; और रोने लगा फूट-फूट कर तो गिरीश ने उसे हृदय से लगा लिया।

महादेवी को यों होश में आता देख सब हर्षित हुए। मालती बहुत विह्वल हो उठी थी। उसने छलछलाई आँखों से पूछा, दीदी का हाथ पकड़े-पकड़े—"अब कैसा जी है दीदी ?"

दीदी ने हौले से कहा—"ठीक हूँ।"

फिर एक बार चारो ओर नजर घुमाई, चारो ओर देखा और किसी को देख न पाकर काँपते कण्ठ से पूछा—" वह कहाँ है ?"

गिरीश ठीक सिरहाने खड़ा था, उमाकान्त के कन्धे पर हाथ रक्खे।

सत्यनारायण ने मोह से कहा—"दादा यह खड़े है।"

तब महादेवी ने अपनी आँखों को ऊपर करके देखा उधर और फिर वह तत्काल उठ बैठी। सिर का अँचल ठीक किया उसने और फिर एक बार देखा गिरीश की ओर और हाय, कुछ कह न पाई, इतने लोगों के बीच, कुछ कर न पाई। अबला, तो मानो निरूपाय होकर रो उठी

कर। उसके हृदय का सम्पूर्ण बल जाता रहा। ओंठ काँपते रहे,तन्वी देह-लता काँपती रही, नयनों से धार बहती रही और मुख मे अंचल ठूँस कर उस करुणा भरे और मोहभरे रुदन को रोकती रही, पर हाय, वह रुदन न रुका!

और वह रुदन ही मानो सब कहता गया उस बेला जो कुछ कहना चाहती थी वह; वह रुदन ही मानो करता गया सब, जो कुछ करना चाहती थी वह। उस करुणा भरे रुदन ने मानो गिरीश के चरणों पर लोट-लोट कर कहा—"हाय मेरे देवता, प्राण निकले जा रहे हैं सुख से। मुझ अभागिन ने कौन पुण्य किये थे, जिनका फल आज यों पा गई! मैं तो सब तरह से, सब ओर से, सदा-सदा के लिये तुम्हारे दर्शनों की सारी आशा तज कर जी रही थी। इतनी सालों से 'विधवा' का वेश धारण किये रही, यह अपराध तो देखो मेरा! मैं क्या जानती थी कि मेरा सोने का संसार सुरक्षित है! इतना सुख, इतना आनन्द मैं कैसे सह पाऊँगी; हाय देवता, मुझ से सहा नहीं जा रहा है! इस सुख को सह न पाकर ही बेसुध हो गई थी। देखो, कहीं मेरी जान न निकल जाय इस सुख से! मुझे बचाओ, बचाओ देवता, हाय, मै मर न जाऊँ कहीं!"... और महादेवी को यों रोता देखकर मालती के नयनों से आँसू बहने लगे झर-झर और सदा का भावुक इन्द्र बुरी तरह द्रवित हो उठा और दृढ़व्रती सत्यनारायण विचलित हो गया और तिवारी अपनी आंखें पोंछने लगा। उमाकान्त तो तब से यों ही रो रहा था। तब केवल गिरीश ही एकमात्र स्थिर रहा। गिरीश न रोया महादेवी को रोता देखकर। पर किसी को यह साहस न हुआ कि महादेवी को चुप करावे। सब कोई जैसे निरुपाय

थोड़ी देर गिरीश स्थिर दृष्टि से उस रुदन को देखता रहा—देखता रहा—'रो लेने दो उसे, रोयेगी नहीं तो शायद बहुत कष्ट पायेगी।' फिर धीरे से उसने अपना हाथ आगे बढाया, अपना वह हाथ महादेवी की पीठ पर रक्खा और फिर सान्त्वनाभरी वाणी निकली—"शान्त हो जाओ अब।"

......महादेवी ने प्रकृतस्थ होकर सब से पहले इन्द्र की ओर देखा प्रश्नमयी दृष्टि से तो वह समझ पा कर खुद ही कह उठा—"मैं इन्द्र हूँ दीदी, छोटा था तब, दो बार दादा की चिट्ठी लेकर तुम्हारे पास गया था। याद है न?"

रोने से आँखें गुलाबी हो गई थीं। उन्हीं गुलाबी आँखों से निहारती बोली—"याद आ गया मुझे। अब पहचान लिया।"

फिर इधर को ताका तो वह बोल उठा—"मैं सत्यनारायण हूँ दीदी!"

"तुझे तो मैं देखते ही पहचान गई थी कि मेरा सत्तो भैया है यह।"

तब तक मालती ने अपने दोनों बच्चों को आगे बढा दिया जो अब तक की बातों को हक्का-बक्का हो कर देख रहे थे। दोनों बच्चों ने बारी-बारी चरणों पर सिर रखा तो महादेवी ने कातर होकर दोनों को छाती से चिपका लिया। फिर उनके ललाट का चुम्बन करके ममता में डूबकर कहा—"सुखी रहो लालन मेरे, खूब उन्नति करो, देश का मुख उज्ज्वल करो।"

अवसर पा कर मालती ने आगे झुक कर भक्तिभरे हृदय से प्रणाम किया चरण छू कर।

"इतनी देर बाद!" इन्द्र ने फौरन टोंक दिया और मालती ने सिर झुका लिया सुनकर, तो महादेवी ने उसकी ठोढी छू कर प्यार से पूछा—"यह मुझे परेशान तो नहीं करता कभी, यह मेरा शैतान भाई?"

मालती ने गद्गद हो कर कहा हौले से—"अब यह कभी परेशान करेंगे तो फ़ौरन खबर दूँगी तुम्हे।" और तब अनायास ही महादेवी की नज़र उमाकान्त पर जा पड़ी तो स्नेहपूर्वक उससे पूछने लगी—"मेरी शशि भाभी को कहाँ छोड़ आये ? मेरा यह परिवार देखती आज तो फूली न समाती। अच्छी तरह तो है न ?"

"हाँ, ठीक है।" उमाकान्त सिर डाले बोला—"परीक्षा की तैयारी मे लगी है।"

"अच्छी तो है ? उससे कहना शनिवार को शाम को मैं उधर आऊँगी और खाऊँगी भी वही।"...

"लो खाओ दीदी !" मालती ने जल्दी-जल्दी सब चीजें सामने रख कर कहा; फिर दौड़ी-दौड़ी गई चाय की केटली लाने। फिर प्याले ले आई जल्दी से। महादेवी देखती रही और मुसकराती रही। "खाओ दीदी !" मालती ने अनुनय के स्वर मे कहा। बच्चे अब तक गोद मे ही बैठे थे। महादेवी ने एक पकौड़ी उठा कर छोटे बच्चे के मुंह मे दी, फिर बड़े को खिलाया।

"तुम भी खाओ दीदी !"

महादेवी ने करुण-प्रार्थिनी होकर कहा—"मुझे आज क्षमा करो मालती भाभी, आज मैं खा न सकूँगी। मेरे इन भाइयों को खिलाओ।"

"तो चाय ही पी लीजिये !"

"अच्छा, चाय पी लूँगी।"

तभी उधर बैठे गिरीश ने जरा-सा हंसकर पूछा—"मैं खा सकता

सब हँस पड़े एक साथ। महादेवी ने लजाकर कहा—"खा लो

तुम।''......नाश्ता समाप्त होते ही महादेवी ने इन्द्र से पूछा—''कितना बज गया भैया ?''

''आठ-चालीस।''

''तो मैं चलूँ अब। भाभी, तुम दुखी मत होना। मैं रविवार को फिर आऊँगी तुम्हारे पास, तब जी भर कर बातें करूँगी और हम दोनों मिलकर रसोई बनायेंगे और साथ बैठकर खायेंगे।'' और इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई और गिरीश की आँखों में आँखें डालकर अधिकार के स्वर मे कहा हौले से—''चलो।''

...''दीदी, मैं तुम्हें पहुँचाने चलूँ ?''

''नहीं।''

''दीदी, मैं चलूँ साथ ?''

''नहीं।''

''मैं, दीदी ?''

''नहीं। अच्छा, मालती भाभी, नमस्ते !'' और दोनों बच्चों को फिर एक बार चूम कर महादेवी चल पड़ी गिरीश को साथ लेकर।...

महादेवी चली गई तो यहाँ जैसे सन्नाटा हो गया, जैसे कमरे की तेज रोशनी मद्धिम पड गई और जैसे आनन्द बुझ गया यकायक।

मालती जूठे बरतन उठा ले गई तो इन्द्र ने मौन खड़े उमाकान्त से कहा—''बैठो भाई ! तिवारी, तुम भी बैठ लो ज़रा।''

सत्यनारायण खाली पड़े पलंग पर लेट गया तो बिना कुछ भूमिका बाँधे इन्द्र ने उमाकान्त से मुख़ातिब होकर कहा—''हम लोगों ने तो कुछ और ही अन्दाज़ लगाया था !''

उमाकान्त साँस खींचकर बोला—"अन्दाज़ तो एक तरह ठीक ही था और इसी पापमयी दृष्टि से मैंने वह सब किया जो कोई राक्षस भी न करता। अपने बन्धुओं के सर्वनाश का कारण मैं ही हूँ, मैंने ही अपने देवोपम दादा को मौत के मुँह में ढकेल दिया और महादेवी को धोखा देकर ले आया वहाँ से। पर तुम यह सोचो भाई इन्द्र, कि शेरनी भी क्या कभी गीदड़ को ब्याही गई है ? वह कपट की दीवार दो ही दिन में ढह गई और दीदी को सब मालूम हो गया और उसने मुझे सामने बैठाकर कहा कि—'मैं तेरे मन की सब बात जान गई हूँ। वह तो यों ही जान हथेली पर लिये भटक रहे थे ! तेरे हाथों सब हुआ, एक भाई ने भाई से ऐसा विश्वासघात किया, मुझे यही दुख है। पर तूने जिस मांस-पिंड के लोभ से यह सब छल-प्रपंच किया, वह मांस पिंड भी तुझे कभी मिल न सकेगा—यह जानता है कि नहीं ? मैं अभी-इसी क्षण अपनी जान दे देती, पर जिनके लिये जी रही हूँ, उनकी आज्ञा के बिना नहीं मरूँगी, यह मेरा निश्चय है। एक दिन, दो दिन, दस दिन, पचास दिन, हज़ार दिन, एक साल, दस साल, बीस साल, सम्पूर्ण जीवन मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगी। शायद कभी भेंट हो जाय, शायद कभी देखने को मिल जाँय; तब उनसे कह तो सकूँगी—तुम्हारी धरोहर मान कर इस हाड़-मांस को ढोती रही हूँ, अब जो चाहो सो करो इस जर्जर काया का ! मैं तो परकटे पंछी की तरह हो चुकी, अब भला कहाँ उड़कर जा पाऊँगी ? अब मुझे तेरे ही साथ रहना है हत्यारे, एक कमरे मे रोज़ तेरे साथ सोना है। मैं जानती हूँ, तू कभी मेरी देह का स्पर्श भी न कर सकेगा—इतनी सामर्थ्य तेरी नही है। पर मुझे, झूठी 'लोक-लाज' रखने के लिये, अपना 'पति' कहकर तेरा परिचय देना होगा—अब मैं तुझे 'भाई'

नहीं कह सकूँगी। किसी भी लड़की का कोई भी भाई 'पापी' नहीं होता और 'पति' तो हजारों के पापी होते है; तू मेरा 'पति' होकर रह अब। दुनिया से ठीक उल्टा, राह से भटकी औरतें बाहरी रिश्ता दिखाकर भीतर से किसी की 'पत्नी' बन जाती है। पर मै बाहर से तेरी 'पत्नी' बनकर भीतर से और रिश्ता रखूँगी। भेड़िये की माँद मे यह मांस का लोथड़ा रहेगा और भेड़िया इसे सूँघ भी न पायेगा। और अब तू ले चल मुझे यहाँ से कहीं अन्यत्र, नहीं तो दल के नियमानुसार कोई न कोई ज़रूर आ टूटेगा तेरे ऊपर और मैं कुछ न कर पाऊँगी। फिर और तू अगर मार दिया गया तो मैं कहाँ अकेली रहूँगी और तेरे पापों का प्रायश्चित्त भी कैसे होगा फिर? इसलिये चल अभागे, यहाँ से चल जल्दी।' और दूसरे ही दिन ये लोग आ गये पिस्तौल मे गोली भरे मुझे निशाना बनाने के लिये, यह सत्तो भाई और विभूति। दीदी ने इनसे आँचल पसार कर मेरे प्राणों की भीख माँग ली और बचा लिया मुझे। पर मैंने तुमसे कहा न, शेरनी क्या कभी गीदड़ की हुई है? उस दिन से आज तक फिर मैं कभी एक शब्द भी बोल न सका अपने लिये। वहाँ से भागा फिर दीदी को साथ लिये और जाने कहाँ-कहाँ भटकता फिरा। कलेजे मे जैसे हर समय भट्टी सुलगती रहती, कहीं पल भर को चैन न मिलता, दिन रात सोचता रहता—हाय, यह मैंने क्या किया? पर कोई राह नजर न आती और जहाँ कहीं हम पहुँचते हर जगह दीदी मुझे अपना 'पति' बतलाती और मेरे कलेजे में बरछियाँ चलतीं। दीदी ने बड़ी सरलता से अपने जीने की राह निकाल ली—सेवा और सेवा। यह तो बहुत बड़ा काम था और यह काम हर जगह था, हर समय था। पहिले अहमक़ की तरह देखता रहा कुछ रोज़

उसी के पीछे हो लिया फिर। जो कुछ वह करती, वही करने लग जाता। जहाँ जाती, उसी के पीछे-पीछे चला जाता। जैसे ठोस अँधेरे के बीच कहीं एक धीमी-सी प्रकाश-रेखा दीख पड़ी मुझे।

"फिर दादा की मृत्यु का समाचार मिला एक दिन। रोई नहीं, अवसन्न हो गई। चिल्लाई नहीं, मूक हो गई बिलकुल। सात-आठ दिन तक, न तो अन्न छुआ और न कमरे से बाहर निकली। जैसे किसी अथाह सागर में डूब गई हो। डूबकर फिर उछली जैसे तो वह महादेवी न रही—वह गंगा बहिन थी और वह गंगा बहिन अपनी छाती पर पचास मन का बोझ रक्खे चलने-फिरने लगी एक दिन और फिर उसी काम में जुट गई, जो उसकी ज़िन्दगी रोके था—उसकी ज़िन्दगी बन गया था।

"अन्त में, हम यहाँ आ गये—दिल्ली। यहाँ आकर उसने क्या-क्या किया है, कैसे अपने तन की, अपने मनकी और अपने प्राणों की आहुतियाँ देती रही है दुखियों के लिए—सो बहुत लम्बी कहानी है, फिर कभी फ़ुरसत से सुनाऊँगा तुम्हे। फिर अचानक ही वह एक दिन एक शरणार्थी लड़की को ले आई और मुझसे कहा कि इससे शादी कर ले तू। रूप के लिये पागल था, रूप ले तू—तेरा मन तृप्त हो जाय! बहुत तप चुका तू, अब उस सुख को भोग ले, जिसके लिए हर 'मर्द' व्याकुल रहता है। यह शशि मेरी भाभी बनेगी, अब तेरा घर बसेगा और आज से मैं तुझे फिर 'भैया' कहकर पुकारा करूँगी—" सुनाते-सुनाते उमाकान्त का गला भर आया।

"हे भगवान्, कैसी अद्भुत बातें देखी आज और कैसी अनहोनी-सी बात सुनी आज। धन्य हो गंगा बहिन—धन्य हो महादेवी, तुम किस देवलोक

से इस धरातल पर उत्तर आई हो बहिन, हम सब तुच्छ जीवों का जीवन सार्थक करने ?"—तिवारी बोला।

सत्यनारायण ने इधर को करवट लेकर कहा—"अब मेरा अगला उपन्यास यही होगा—यही दीदी वाली कहानी लिखूँगा मैं। पढ़कर पाठक चकित हो जायेंगे कि क्या ऐसा भी सम्भव है।"

सहसा कन्धे पर किसी का स्पर्श पाकर इन्द्र ने मुँह फिराया तो मालती खड़ी थी पीछे। नीचे को झुककर कान मे बोली धीरे से—"पकौड़ियाँ बहुत बच गई है। किसी ने कुछ खाया ही नही!"

तिवारी ने सुन पाकर फ़ौरन कहा—"पकौड़ियाँ बच गई है क्या ? मैं तो संकोच के कारण कुछ खा ही नहीं सका भाभी!"

"तो अब निःसंकोच होकर खाइये श्रीमान् जी!"—इन्द्र ने कहा। मालती भीतर जाने लगी तो सत्यनारायण ने जम्हाई लेकर कहा—"भाभी, चाय मिलेगी फिर ? मेरा तो सिर दर्द करने लगा। बड़ी विचित्र अनुभूति हुई है आज!"

... ...

सवारी नहीं की, बस पर भी नहीं बैठे। दोनों घनी बस्ती से पार निकल कर, सूनी पड़ी सड़क पर आ गये। चतुर्दशी का चांद धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता आ रहा था। पेड़ों के नीचे से अँधेरे और उजाले के बीच चले जा रहे थे दोनों।

इतनी देर तक जुवान न खुली किसी की, इतनी देर बाद मौन टूटा। साथ-साथ क़दम बढ़ाते गिरीश ने पूछा—"कितनी दूर चलना होगा ?"

"तुम थक गये हो ?"

"हाँ, थक गया हूँ।"

महादेवी पास आ गई, सट कर कहा हौले से—"मेरा सहारा ले कर चलो।" और गिरीश का हाथ पकड़ कर अपने कन्धे पर रख लिया।

सहारा लिये आगे बढ़ने लगा गिरीश और कहने लगा—"तुमने बहुत दुख सहे हैं।"

"दुख तो तुमने सहे है। तुम्हारे दुखों का दुख ज़रूर सहा है।"

सहारा लिये बढ़ने लगा और पूछने लगा—"नाम क्यों बदल दिया?"

"मैं देवी नहीं हूँ। देवी नहीं होना चाहती। सब के चरणों के नीचे जगह है मेरी।"

"पर गंगा तो देवता है न?" —आगे बढते बोला।

"नहीं। सरिता है—किसी शैल के हृदय का स्नेह-रस! सब की सेवा का भार लिये, ऊबड़-खावड राहों से बहने वाली, दिनरात गतिमयी, एक नदी है। एक बात पूछूँ?"

"पूछो।"

"पहाड़ कभी नहीं हिलता। पहाड़ हिलता है तो प्रलय हो जाती है। तुम्हारे क़दम डगमगा रहे है?"

"हाँ, मेरे कदम डगमगा रहे है।"

"मैं यह नहीं सह सकूँगी। और पास आ जाओ, और पास। मेरे ऊपर सब भार दे दो अपना।" महादेवी ने गिरीश की कमर को एक हाथ से कस लिया और धीरे से बोली—"क़दम मजबूती से रक्खो। अब तो चल सकोगे न?"

"हाँ, चल सकूँगा। पर मैं तो राह नहीं जानता। कहाँ जाना है हमें ?"

"राह मैं जानती हूँ। मैं तुम्हे ले चलूँगी। वह रोशनी दीख रही है न ? इस अँधेरे को बेधती, नक्षत्रों से ठीक नीचे, वह छोटी-सी ज्योति देख रहे हो न ? बस, वहीं तक चलता है। वहीं कुटिया है मेरी। वहीं तुम्हें विश्राम मिलेगा।"

"उस रोशनी तक पहुँचना है ? बहुत दूर है मंज़िल।"

"मंजिल तो हमेशा दूर ही होती है। राह नजदीक रहती है। राह पैरों के नीचे है यह और सहारा तुम्हारे साथ है। सहारा बीच में छूट गया था। क्यों ऐसा होता है ?"

"सहारे की क़ीमत जानने के लिए। आगे शायद मोड़ है।"

"हाँ, एक नया मोड़ है आगे। अब अँधेरा न पड़ेगा। खुले आकाश के नीचे चलना है अब, चन्दा-तारों की छाया मे।"

फिर चुप-चुप आगे बढ़ने लगे एक दूसरे को सहारा दिये तो क़दम से क़दम मिलाकर चलती महादेवी ने पूछा—"उमाकान्त को क्षमा कर दोगे ?"

"मैंने उसे क्षमा कर दिया है। तुमने ?"

"मैंने भी उसे क्षमा कर दिया है।"

फिर चुप-चुप आगे बढ़ने लगे। क़दम से क़दम मिलाकर चलती महादेवी के ओठों से निकला—"और कुछ कहो !"

"कुछ नहीं कहना है अब। तुम कुछ कहो !"

"मुझे भी कुछ नही कहना है अब।"

फिर चुप-चुप आगे बढ़ने लगे, क़दम से कदम मिलाकर।...

... ...

टीन से छायी, छोटी-सी कोठरी में, श्रान्त हुआ गिरीश लेट गया तख्त पर और उसने चैन पाकर आँखें मूंद लीं।

महादेवी जाने क्या करती रही जल्दी-जल्दी। फिर उसने पॉयते खड़ी होकर कहा हौले से—"जरा पैर नीचे लटका दो। धो दूँ इन्हें।"

गिरीश ने आँखें मूंदें ही पैर इधर को कर दिये। नीचे एक पात्र रख कर महादेवी धीरे-धीरे पैरों को धोती रही। फिर पात्र को बाहर उठा ले गई।

सुनसान चाँदनी में सोये आँगन के बीच आकर महादेवी ने एक बार चारो ओर देखा। फिर नयन मूँद कर देवता का वह 'चरणामृत' ओठों से लगाने लगी तो चाँद ने देख लिया।

चाँद मानो मुसकराया और चाँद बोला—"पी ले! कोई नहीं देख रहा है। इस चरणामृत को पाने के लिए ही तूने सब सहा है—मैं जानता हूँ। यह तेरे देवता का चरणामृत है न! यह तेरी संजीवनी है। इसे पीकर तू अजर-अमर हो जायेगी। पी ले!"

और महादेवी नयन मूँद कर वह एक घूँट जल पी गई।

वह चरणामृत कंठ की राह सीधा हृदय मे उतर गया तो दोनों मुँदे नैनों की बरोनियों पर मोती छलछला आये।

उन आँसुओं को देख कर चाँद फिर बोला—"रोने क्यों लगी पगली? अपने खोये हुए देवता को तू ने पा लिया है। अब काहे का दुख

है ? रो मत, तू ने रो-रो कर इन शरबती आँखों का यह हाल कर लिया है ! मुझे वह दिन अभी तक याद है, जब देवता से तेरी पहली भेंट हुई थी। वह पहली-पहली तेरी उदास रात—चिन्तना मे डूबी इन आँखों की गहराइयाँ मैने नाप ली थीं। तब से बराबर तुझे देखता आ रहा हूँ हर रात को। तेरी पूरी कहानी मुझे याद है और तेरी यह कहानी मुझे सदियों तक याद रहेगी।...पर महादेवी, तेरी कहानी मेरे लिए नयी नहीं है। तेरी ही तरह तेरी कितनी ही बहिनें वही कर चुकी हैं, जो कुछ तूने किया है। तेरी उन बहिनों ने भी अपना दुख कलेजे में दाब लेकर, माँ होकर हजार-हज़ार सन्तानों की रक्षा की है। और बदले में कुछ नहीं माँगा है, तेरी तरह। बस, काल की इतिहास-भूमि पर लिखी उन कहानियों में एक कहानी और जुड़ रही है—एक नया पृष्ठ !

पर दुनिया उन कहानियों को भूल गई। इस यथार्थ और ठोस दुनिया ने—इस मिट्टी की दुनिया ने—उन सब पिछली कहानियों पर मिट्टी डाल दी और यह दुनिया एक दिन तेरी इस कहानी पर भी मिट्टी डाल देगी।

प्यार और अनुराग भरी दुनिया ! भावों भरी दुनिया ! मेरा विश्वास है, वह दुनिया तेरी यह कहानी कभी न भूलेगी !"...

पुनश्च

......इतनी बातें उस चाँद ने कहीं, जो चाँद युग-युगान्तर से असंख्य नारियों के विरह और मिलन का साक्षी रहा है!

जो चाँद संसार भर के कवियों और कलाकारों की कल्पना का सहारा रहा है!

और, अब जिस चाँद पर आदमी चढ़ रहा है!

आदमी का कहना है कि—
चाँद कैसे बोला?
चाँद कभी बोल सकता है!
चाँद में कुछ नहीं है!
चाँद में सिर्फ़ पत्थर हैं!

और, एक दिन आदमी उन पत्थरों पर जा खड़ा होगा और तब आदमी ख़ुद भी पत्थर हो जायगा!

उस दिन कलाकारों की कल्पना का चाँद मर जायेगा और मेरी इस भावों भरी कहानी का कोई मूल्य न रहेगा!

क्या यह सच है?